卐

२५००वें निर्वाण महोत्सव पर

श्री महावीर निर्वाण स्मारिका

वीर संवत २५०१

(चतुर्थ पुष्प १९७४)

प्रबन्धक मण्डल	सम्पादक मण्डल
श्री ताराचन्द गोदीका	श्री श्रीपाल शाह
श्री सुरेशचन्द काला	श्री पदमचन्द सेठी

प्रकाशक :

श्री महावीर नवयुवक मण्डल

१२६२, आचारियों का रास्ता, किशनपोल बाजार

जयपुर-३

श्री महावीर नवयुवक मण्डल, जयपुर

कार्यकारिणी समिति

अध्यक्ष		श्रीपाल शाह
उपाध्यक्ष		महेश जैन
मत्री		पदमचन्द सेठी
उपमत्री		शेखर शाह
कोषाध्यक्ष		विजयकुमार पाड्या
सास्कृतिक मत्री		अरुण शाह
आयोजन व्यवस्था मत्री		सतीश गोधा
सूचना एव प्रसारण मत्री	...	ताराचन्द जैन
कार्यकारिणी सदस्य	..	सुशीलकुमार जैन
कार्यकारिणी सदस्य	..	नौरतनमल जैन
कार्यकारिणी सदस्य		अशोक पाड्या

अनुक्रमणिका

मुद्रक :

कपूर चन्द काला

कपूर आर्ट प्रिण्टर्स

मनिहारो का रास्ता, जयपुर-३

❀ दो शब्द ❀

भगवान महावीर का २५००वाँ निर्वाण महोत्सव इस वर्ष देश मे ही नही विश्व भर मे बडे धूमधाम के साथ मनाया जा रहा है। इसके विभिन्न कार्यक्रम निश्चित किए जा चुके हैं और कुछ को अभी अन्तिम रूप दिया जा रहा है। इस अवसर पर श्री महावीर नवयुवक मडल के तत्वावधान मे 'महावीर निर्वाण स्मारिका' का चतुर्थ पुष्प आपके हाथो मे है। स्मारिका प्रकाशन की जो योजना बनाई गई थी, वह कागज की कमी, मूल्य वृद्धि और महगाई के कारण पूरी नही हो सकी है; परन्तु सीमित साधनो मे हम जो कुछ प्रस्तुत कर सके हैं, उसका निर्णय तो पाठकगण ही कर सकेगे। इस वर्ष स्मारिका के सम्पादन मे पूर्ण सहयोग श्री ताराचन्दजी गोदीका का रहा है, और श्री कुबेरचन्दजी काला का परामर्श सदा की भाति मिलता रहा है। आपने जिस लगन एव परिश्रम से इस कार्य को सम्पन्न किया है, उसके लिए हम मडल के सहयोगी उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ है।

जिन जिन विद्वानो ने रचनाए भेजकर तथा विज्ञापनदाताओ ने अपने प्रतिष्ठानो के विज्ञापन देकर आर्थिक सहयोग दिया है, उनके भी हम आभारी है। कतिपय लेख हम स्थानाभाव के कारण प्रकाशित नही कर सके हैं, इसके लिए लेखकगण कृपया क्षमा करें।

श्री महावीर नवयुवक मडल को जिन-जिन महानुभावो ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग एव सहायता प्रदान की है, हम उनको भी धन्यवाद देना चाहते हैं। मडल के साथियो का जो सहयोग शिल्प है, वह और भी अधिक मिलेगा, ऐसी आशा है।

विनीत :

श्रीपाल शाह	पदमचन्द सेठी
अध्यक्ष	मत्री
श्री महावीर नवयुवक मण्डल, जयपुर	श्री महावीर नवयुवक मण्डल, जयपुर

आचार्य श्री १०८ श्री विमल सागरजी
पो० शिखरजी (गिरीडीह)
दि० ५-१०-७४

शुभाशीर्वाद

आपकी यह स्मारिका जैन धर्म का प्रसार करने मे दिन रात चौगुनी फलीभूत हो। अहिंसा का पूर्ण प्रचार हो। लेख चित्रो द्वारा सज्जित होकर भारतवर्ष मे आदर प्राप्त करे। आप लोगो का उत्साह इसी प्रकार वृद्धिगत हो, ऐसा महाराज ने आशीर्वाद कहा है तथा आपका कार्य सराहनीय हो और अच्छे ढग से प्रकाशित हो।

ब्र० चित्रावाई
श्री १०८ आचार्य श्री विमल सागरजी
सघस्थ

साहू शान्ति प्रसाद जैन

टाइम्स हाउस,
७, बहादुरशाह जफर मार्ग
नई दिल्ली-१
दिनाक ४-१०-७४

आपका दिनांक १-१०-७४ का पत्र मिला। धन्यवाद! आपका भगवान महावीर के २५००वे निर्वाण महोत्सव के अवसर पर एक स्मारिका उनके जीवन के उद्देश्यों के प्रचार के लिए निकालने का जो निश्चय है, उसकी मैं सराहना करता हूँ।

जय जिनेन्द्र,

साहू शान्ति प्रसाद जैन

सेठ मूलचन्द सोनी मार्ग
अनोप चौक, अजमेर
दिनांक 4-10-74

प्रिय महोदय,

श्री महावीर नवयुवक मंडल के तत्वावधान में स्मारिका प्रकाशन के वृत्त अवगत कर अत्यंत प्रसन्नता हुई। नवयुवक मंडल के माध्यम से स्मारिका प्रकाशन का प्रयास निस्सन्देह युवकों में जागृति का परिचायक है।

विश्वास है कि नवयुवक मंडल की स्मारिका नवयुवकों को दिशा बोध प्रदान करने के साथ साथ विश्व वंद्य भगवान महावीर स्वामी के दिव्य संदेशों का जन-जन तक प्रचार प्रसार करने में समर्थ सफल होगी।

समाज की बागडोर संभालने का दायित्व भविष्य में नवीन पीढ़ी के कन्धों पर ही आने वाला है। उनकी जागरूकता और क्षमता ही सही मार्ग दर्शन प्रदाता होगी, इसी सद् भावना के साथ मैं आपके प्रयासों की हृदय से सफलता चाहता हूं।

जय जिनेन्द्र!

आपका
भागचन्द सोनी

राष्ट्रपति सचिवालय,
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली 110004
पत्रावली सख्या 8 एम 74

सितम्बर 23, 1974

सन्देश

प्रिय महोदय,

दिनाङ्क 19 सितम्बर के आपके पत्र से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भगवान महावीर के 2500 वे निर्वाण दिवस के अवसर पर आप एक स्मारिका के प्रकाशन का आयोजन कर रहे हैं। आपके प्रयास की सफलता के लिए राष्ट्रपतिजी आपको शुभ-कामनाये भेजते हैं।

भवदीय,
(खेमराज गुप्तः)
राष्ट्रपति का उप सचिव

RAJ BHAWAN
BANGALORE
6 अक्टूबर, 1974

सन्देश

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि श्री महावीर नवयुवक मंडल, जयपुर, भगवान महावीर के २५००वें निर्वाणोत्सव के शुभ अवसर पर एक स्मारिका प्रकाशित करने जा रहा है। मुझे आशा है कि इस स्मारिका मे भगवान महावीर के सदेशो का पूर्ण विवरण प्रकाशित किया जायगा, जिससे जनता लाभान्वित होगी। स्मारिका की सफलता के लिये मैं अपनी शुभकामनाए भेजता हूँ।

(मोहनलाल सुखाडिया)
राज्यपाल, कर्नाटक

मुख्य मत्री,
मध्यप्रदेश

भोपाल
दिनाङ्क 16 अक्टूबर, 1974

भगवान महावीर का 2500वाँ निर्वाण महोत्सव निश्चय ही ऐसा पवित्र और प्रेरणादायी प्रसग है, जो हिंसा घृणा, सन्देह और लोभ के विकारो से ग्रस्त मानव समाज को कल्याणकारी पथ की ओर उन्मुख होने के लिये आह्वान करता है।

यह हर्ष का विषय है कि श्री महावीर नवयुवक मंडल, जयपुर भगवान महावीर के 2500 वे निर्वाणोत्सव के अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन करने जा रहा है। युवा वर्ग इस दिशा मे विशेष रुचि ले रहा है, यह सराहनीय है। मै आशा करता हू कि वे समाज को नवीन दिशा प्रदान करेंगे तथा महावीर स्वामी के उपदेशो को जीवन में उतारने के लिए जन मानस का निर्माण करेंगे।

मै आपके प्रयास की सफलता की कामना करता हू।

—प्रकाशचन्द सेठी

वित्तमंत्री, राजस्थान
जयपुर
अक्टूबर 5, 1974

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि श्री महावीर नवयुवक मण्डल, जयपुर द्वारा भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण दिवस के शुभ अवसर पर दिनांक १३ नवम्बर, १९७४ को एक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

आशा है नवयुवक गण भगवान महावीर के जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर उन्हें अपने जीवन में उतारेंगे। ऐसा ही हम सही मायने में उनका निर्वाण दिवस मना सकेंगे।

मैं इस अवसर पर अपनी शुभ कामनाएं प्रेषित करता हूँ।

—चन्दनमल वैद

मोहन छगाणी

जयपुर
(राजस्थान)
28 अक्टूबर, 1974

सन्देश

मुझे प्रसन्नता है कि श्री महावीर नवयुवक मण्डल, जयपुर द्वारा महावीर जी के 2500वे निर्वाण दिवस पर एक स्मारिका प्रकाशित की जा रही है।

महावीर जी के अहिंसा और अपरिग्रह जैसे सिद्धान्तो को जीवन मे उतार कर ही हम उनके प्रति सच्ची श्रद्धाजली अर्पित कर सकते है।

आशा है स्मारिका में महावीर जी के आदर्शों पर विस्तार से प्रकाश डाला जावेगा।

शुभ कामनाओ सहित—

—मोहन छगाणी

कमला वेनीवाल
राज्य मत्री, चिकित्सा एव
स्वास्थ्य विभाग

राजस्थान
जयपुर, दिनाक १-११-७४

सन्देश

प्रसन्नता है कि श्री महावीर नवयुवक मण्डल, जयपुर के तत्वावधान मे महावीर जी के २५०० वे निर्वाण दिवस पर एक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

आज की स्थिति मे भौतिक सकटो से मुक्ति पाने के लिए महावीर स्वामी के अहिंसा, अपरिग्रह और स्याद्वाद के सिद्धान्तो को जीवन मे उतारना अत्यावश्यक है।

आशा है, जन साधारण की जानकारी के लिए स्मारिका मे महावीर स्वामी के आदर्शो पर विस्तार से प्रकाश डाला जावेगा।

शुभ कामनाओं सहित,

(कमला वेनीवाल)

卐

ज्योति पुञ्ज जीवन के

—ताराचन्द 'निर्विरोध'

बचपन के तुम वर्द्धमान थे,
सन्मति थे तुम यौवन के,
ज्योति पुञ्ज थे अखिल विश्व के,
दर्शन थे जग-जीवन के,

जहा विरोधाभास खड़े थे,
और असंगति मुंह बाए थी;
जहाँ टूटते मूल्य देखकर,
मानवता भी अकुलाए थी,

अंधियारे की बाहुपाश मे,
सिमट रही थी सभी दिशाएँ;
जहाँ विषमता और विफलता,
आठ पहर थी दुखी तृषाएँ,

वहाँ एक तुम ज्ञानोदय थे,
तीर्थंकर थे सकल भुवन के;
जहाँ ज्योति का और तिमिर का,
हर-क्षण युद्ध छिडा रहता था,

झूठ और छल पनप रहे थे,
सत्य यातनाएँ सहता था;
सत्य, अहिंसा और आर्जव,
त्याग मार्दव, सयम, तप के,

लक्षण दिए जगत को तुमने,
कष्ट हरे मन के आतप के;
तुम तो होकर रहे अहर्निश,
पथ प्रदर्शक जग-गण मन के।

●

२५००वें निर्वाण दिवस पर संकल्प

यह परम सौभाग्य है कि तीर्थंकर श्री महावीर का २५००वां निर्वाण दिवस मनाया जा रहा है, और यह दिवस ही नही पूरा वर्ष मनाया जायगा। इसके लिए राष्ट्र, राज्य एव समाज स्तर पर महोत्सव कमेटियां गठित हुई हैं। केन्द्र मे राष्ट्रपति के सरक्षण एव प्रधान मत्री के नेतृत्व मे राष्ट्रीय कमेटी बनी है, जिसके अन्तर्गत राज्य सरकारो ने भी राज्यपाल के अधीन कमेटियां एतदर्थ चयनित की है।

यह निर्वाणोत्सव इस प्रकार कमेटियो के गठन या इसके लिए किये गये चयनित सदस्यो मे ही उत्पन्न नही होगा, अपितु इसके लिए प्रत्येक जन को अपनी पूर्ण निष्ठा, लगन और तन-धन से जब तक क्रियात्मक होना पडेगा, अपने धर्म के प्रति जागरूकता रखनी होगी, दर्द रखना होगा तथा उसके लिए अपरिग्रही होना होगा। आम श्रावक धर्म मे शिथिलता देखी जा रही है—सभी एक-दूसरे की आलोचना करते हैं, टीकाएं करते हैं या अपने समूह या सघ की एक पक्षीय प्रशंसा भी करते हैं। इन सबमे हम अपने को नही देखते, अपने कर्मों को नही निहारते, अपनी आत्मा का परीक्षण नही करते तथा अपने मन को निर्मल नही रखते।

मुनिगण की शिथिलता की श्रावक एव गृहस्थ चर्चा या आलोचना करते समय स्वयं को नहीं निहारता कि वह क्या वास्तव मे पूर्णत श्रावकाचार का पालन कर रहा है।

समाज मे आज श्रावक धर्म के प्रति शिथिलता के दुष्परिणामो मे ही अनैतिकता, अभोज्य पदार्थों का सेवन, सग्रहवृत्ति, लोलुपता, कषाय एव ईर्ष्या ने स्थान बनाया है। यदि हम इस निर्वाणोत्सव पर अपने आचरण, विचार या व्यवहार मे धार्मिक शिथिलता को दूर करने का सकल्प लें तो यह महोत्सव मनाना तो सार्थक होगा ही, अपितु विश्व मे शाति का वातावरण बनाने मे भी हम सहयोगी होगें।

यह हमारा सौभाग्य ही मानना चाहिये कि हम ऐसे कुल मे उत्पन्न हुए हैं जिसमे हमें तीर्थंकर श्री महावीर का २५००वां निर्वाण महोत्सव मनाने का, उसमे योगदान करने का तथा कुछ सकल्प लेने का अवसर मिला है। अत इस पावन महोत्सव पर हम सभी मूल सिद्धातो के प्रति दृढता एव निष्ठा रखने का सकल्प ग्रहण करें।

★

युग निर्माता भगवान् महावीर ★

० क्षुल्लक सन्मति सागर

भारत वसुन्धरा सचमुच 'वसुन्धरा' वैभव-शालिनी है। प्राकृतिक पदार्थ का जो असीम एव अक्षय भण्डार प्रकृति ने भारत को प्रदान किया है वह किसी अन्य देश को नही मिला। भारत की उर्वरा भूमि जिस प्रकार सभी प्रकार के अन्न, फल, गन्ना, रूई, औषधिया आदि वनस्पतिक पदार्थों का प्रचुर मात्रा मे उत्पादन करती है, उसी तरह अपने गर्भ से सभी तरह की आवश्यक एव मूल्यवान् खनिज वस्तुओ को भी यथेष्ट मात्रा मे उगलती है, अनेक अमूल्य अज्ञात पदार्थ राशि अभी भी उसके गूढ गर्भ मे छिपी हुई किसी कुशल अन्वेषक की बाट देख रही हैं। उसी भारत भूमि पर सनातन अनादि समय से उन महान पुरुषो का अवतरण भी होता रहा है जिनको विश्व असाधारण अद्वितीय मानव स्वीकार करता है। धर्मवीर, रणवीर, सच्चरित्र, महान ज्ञानी, ध्यानी तपस्वी, युगप्रवंतक व्यक्ति जो समय समय पर भारत भूमि पर प्रकट हुए उनकी समता और क्षमता के व्यक्ति विश्व के अन्य किसी भूखण्ड पर अवतरित नही हुये।

आज से २५७३ वर्ष पूर्व बिहार प्रान्त के कुण्डलपुर नगर के गणतन्त्र शासक क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ के राजभवन मे अच्युत स्वर्ग से चयकर भगवान महावीर के जीव ने आषाढ सुदी छठ को माता त्रिशला के यहां गर्भ मे प्रवेश किया। त्रिशला देवी कोमल शैय्या पर शयन कर रही थी। उसने रात्रि के पिछले पहर मे अत्यन्त शुभकारक सोलह स्वप्न देखे। प्रभात मे उठकर त्रिशला रानी अपने पति सिद्धार्थ के निकट जाकर आये हुये सोलह स्वप्नो का फल पूछने लगी। राजा सिद्धार्थ ने अपने अवधि ज्ञान के द्वारा बताया कि तुम्हारे गर्भ मे तीन लोक मे प्रकाश करने वाले २४वें तीर्थङ्कर ने प्रवेश किया है। इतना सुनते ही रानी का रोम-रोम खिल उठा।

भगवान महावीर के गर्भ मे आने से छः महिने पूर्व ही इन्द्र की आज्ञानुसार कुबेर ने रत्नवृष्टि शुरू करदी। माता के नौ मास सानन्द व्यतीत हुये। चैत्र सुदी तेरस उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्र, सोमवार २७ मार्च ५९८ ई० पूर्व भगवान महावीर का जन्म हुआ। इन्द्रादि देवो ने कुण्डलपुर ग्राम मे आकर मगल उत्सव किया और भगवान महावीर को पाण्डुक शिला पर लेजाकर क्षीरसागर के जल से अभिषेक किया।

भारत को जिस महान् युग निर्माता की आवश्यकता थी वह इसे प्राप्त हुआ, वसन्त की सुषमा के समान अशान्त वातावरण मे कुछ शान्ति की लहर उद्वेलित हुई।

वैशाली गणतन्त्र के अधिनायक राजा चेटक भगवान महावीर के नाना थे। जन्म से ही भगवान

पूर्वभव के सस्कारो से अतिशय ज्ञानी थे। राजपुत्र के समान उनका पालन-पोषण हुआ। जन्म से ही राजा सिद्धार्थ का यश-वैभव दिनोदिन बढने लगा, अत उन्होने अपने पुत्र का नाम वर्द्धमान रखा। द्वितीया के चन्द्र के समान बढते हुये वर्द्धमान कुमार ने शैशव वय समाप्त की।

अन्य समवयस्क बच्चो के साथ एक दिन जब राजकुमार वर्द्धमान खेल रहे थे तब एक भयानक हाथी अचानक उनके बीच मे आगया। महाकाय हाथी को देखकर अन्य बच्चे भयभीत होकर चीखते हुये इधर उधर भाग गये, किन्तु वर्द्धमान कुमार का साहस और धैर्य कम न हुआ और उस गजराज को मुठ्ठियो की चोट से खडा करके उस पर सवार हो गये। इस आश्चर्यजनक पराक्रम को देखकर उनका नाम 'महावीर' प्रख्यात हुआ। तबसे उन्हे जनता 'महावीर' कहकर पुकारने लगी।

जन्म से ही वर्द्धमान विविध विषयो के पारगत विद्वान थे। अवधिज्ञान नामक दिव्यज्ञान से सम्पन्न थे, अत किसी भी अध्यापक से उन्हें अत्यधिक ज्ञान स्वय को था। इसी कारण उन्होने किसी अन्य व्यक्ति से शिक्षा ग्रहण नही की बल्कि उस समय महावीर कुमार के अतिशय ज्ञान की जन साधारण मे विशेष प्रसिद्धि थी। उसको सुनकर दो अच्छे तत्ववेत्ता साधु अपनी शका निवारण के लिये महावीर के पास आये और उनके सम्पर्क से ही उनका समाधान हो गया। उन साधुओ मे से एक का नाम सजय तथा दूसरे का नाम विजय था। इसी कारण उनका नाम सन्मति प्रख्यात हुआ। इस तरह वर्द्धमान, वीर, अतिवीर, महावीर और सन्मति ये पाच नाम उनके प्रसिद्ध हुये। इनमे महावीर नाम सबसे अधिक विख्यात हुआ।

क्रमश भगवान महावीर ने किशोर अवस्था पार करके तरुण अवस्था मे प्रवेश किया। एक तो कुमार महावीर जन्म से ही असाधारण सर्वांग सुन्दर थे, स्वच्छ स्वर्ण के समान उनका वर्ण था, फिर यौवन ने उनके सौन्दर्य को और भी अधिक चमकाया। उनका युवा शरीर कान्ति और आकर्षण का केन्द्र बन गया। भगवान् महावीर के अनुपम बल, विद्या-सौन्दर्य, सच्चरित्र आदि गुणो से आकृष्ट होकर महासुन्दरी यौवन मे पदार्पण करने वाली राजकुमारी यशोदा की माता ने राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला से प्रस्ताव किया कि राजकुमार महावीर का राजकुमारी यशोदा के साथ पाणिग्रहण होना चाहिये। राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला भी इस सुन्दर युगल के विवाह प्रस्ताव से सहमत हो गये। परन्तु जिस समय यह बात राजकुमार वर्द्धमान के सामनें रखी गई तब उन्होने बडी मधुरता के साथ उसे अस्वीकार कर दिया। माता, पिता तथा यशोदा की माता का बहुत अनुरोध तथा प्रबल प्रेरणा हुई किन्तु वर्द्धमान अपने अटल निश्चय से न टले और विवाह बन्धन से अछूते रहे।

राजसी वैभव मे रहते हुये तरुण अवस्था मे पहुँच कर वर्द्धमान कुमार काम-वासना के शिकार न हुये। इस आत्म-पराक्रम को लेकर उनका नाम अतिवीर भी प्रसिद्ध हुआ।

इस तरह अखण्ड बाल ब्रह्मचर्य से राजभवन में रहते हुये भगवान महावीर ने ३० वर्ष समाप्त किये।

एक दिन उनको जातिस्मरण हुआ तब उनका विचार आत्म-शुद्धि की ओर आकर्षित हुआ, उनकी दृष्टि पहले से भी अधिक अन्तर्मुखी हुई। उन्हे अब सासारिक रहन-सहन से तथा घर के निवास से विरक्ति हो गई। वे घर को बन्दी घर (जेल) समझने लगे। शरीर के राजसी सुन्दर वस्त्र आभूषणो से उन्हे घृणा हो गई। अब उनको जनता का सम्पर्क बहुत अखरने लगा। उसी क्षण लौकान्तिक देव आये और कहने लगे कि धन्य हो आपको आपने बहुत अच्छा विचार किया।

भगवान महावीर को चन्द्रप्रभा नामक पालकी मे विराजमान करके मनुष्यो द्वारा ज्ञातृ वन मे ले जाया गया और उन्होने शाल वृक्ष के नीचे मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन केशलोच कर दिगम्बरी दीक्षा धारण की। आपका प्रथम आहार कुण्डलपुर नगरी मे विश्वसेन के गृह मे हुआ। तरुण राजपुत्र महावीर की साधु बनने की वार्ता भी विख्यात हो गई। जिसने भी सुना, वह दग रह गया कि राजकुमार महावीर ने राजभोगो को ठुकरा कर यौवन काल मे योग अपनाया। राजभवन का निवास त्याग कर वनवास स्वीकार किया। शरीर के वस्त्र तक उतार कर फेंक दिये।

भगवान महावीर ने जिस तरह समस्त सासारिक परिवार के साथ बाहरी सम्बन्ध छोडा उसी तरह उससे भी पहले हृदय से भी सभी जड-चेतन वस्तुओ से प्रेम, द्वेष, घृणा का भाव हटा दिया। इस तरह निर्ग्रन्थ (बाहर भीतर से अपरिग्रही) होकर शमभाव (शात-मानसिक क्षोभ का अभाव) और सम भाव (शत्रुता, मित्रता की कल्पना का अभाव समता) अपनाया तथा अपने श्रम को जागृत किया। दिन रात जागृत रहकर आत्म चिन्तन मे लीन हो गये। जब कभी निकटवर्ती नगर व ग्राम मे जाकर मौन एव निरीह भाव से कुछ थोडा सा आहार पान कर जाते थे तदनन्तर वन, पर्वत, गुफा आदि निर्जन एकान्त प्रदेश मे चले जाते और फिर आत्म-साधना मे निमग्न हो जाते थे।

भगवान महावीर ने इस कठोर तपश्चर्या मे वर्षों विताये। काल की निर्बाध गति के समान उनकी मौन आत्म-साधना निरन्तर चलती रही। भूतकालीन दीर्घ समय का सचित कर्म पुज भार आत्म ध्यान की प्रज्जवलित अग्नि से भस्म होता गया, सुवर्ण की तरह आत्म-शुद्धि प्रतिक्षण बढती गई। अन्त मे बारह वर्ष का लम्बा समय समाप्त हुआ। वैशाख सुदी दशमी के दिन भगवान महावीर ने आत्म-शोधन मे सफलता प्राप्त की।

उनकी आत्मा आत्म-गुण-घातक कर्म-मल से शुद्ध हो गई, राग, द्वेष, मोह निर्मल हो गये, अज्ञान का आवरण सर्वथा दूर हो गया। अत. वे पूर्ण वीतराग, निराकुल एवं सर्वज्ञ भूत, भविष्यत्, वर्तमान के पूर्ण ज्ञाता हो गये। जिस लिये उन्होंने राज वैभव छोडकर कठिन योग चर्या अपनायी थी, वह उद्देश्य सिद्ध हो गया। अत. वे कृत-कृत्य हो गये, जीवन मुक्त हो गये। अब वे यथार्थ मे जगतपूज्य भगवान महावीर बन गये।

भगवान महावीर को केवलज्ञान होते ही देवो ने राजगृही नगर के निकट विपुलाचल पर्वत पर एक बहुत विशाल सुन्दर दिव्य समवशरण की रचना की। समवशरण के ठीक बीच मे भगवान महावीर के लिये तीन कटनीदार अत्यन्त सुन्दर गन्धकुटी बनायी गयी। गन्धकुटी के पास बारह कोठे बनाये ताकि सभी जीव आनन्द के साथ भगवान का उपदेश सुन सकें। गन्धकुटी के ऊपर दिव्य सिहासन पर बैठकर ६६ दिवस पीछे गौतम का निमित्त पाकर श्रावण बुदी प्रतिपदा के दिन भगवान महावीर का मौन भग हुआ। उन्होंने अपनी दिव्यवाणी से प्राणी मात्र का हित करने वाला उपदेश दिया। उनका उपदेश सुनने असख्य नर-नारियो के अलावा अगणित पशु-पक्षी, देव-देवी भी सम्मिलित हुये।

भगवान महावीर की वाणी मे अनादि अनन्त समय तक स्थित रहने वाले जगत का विवरण, जगत के जड-चेतन, चल-अचल पदार्थों का सिद्धान्त, जीवो के सासारिक परिभ्रमण, कर्मबन्धन, कर्ममोचन का विवेचन, आत्मा का स्वभाव, उसके विविध रूप बहुत विस्तार के साथ बतलाया गया। धर्म क्या चीज है और उसका आचरण किस तरह से करना चाहिये इत्यादि धार्मिक सिद्धान्त बहुत अच्छे ढग से समझाये। बुद्धि-परिष्कार के लिये स्याद्वाद का प्रतिपादन हुआ।

भगवान महावीर ने कहा है कि, ससार के सभी जीव वास्तव मे एक स्मान हैं, वे अपने-अपने मानसिक, वाचनिक और शारीरिक शुभ-अशुभ कार्यो के अनुसार शुभ-अशुभ कर्म वन्धन करते है। अपनी कल्पना से अन्य पदार्थों को अच्छा या बुरा मानकर उनसे प्रेम या घृणा करते हैं। इसी तरह से उनमे काम, क्रोध, मोह, राग, द्वेष, लोभ, भय, चिन्ता आदि अनेक प्रकार के दुर्भाव जागृत हुआ करते हैं जिनसे नई नई कर्म जजीर बनती हैं। यदि यह जीव अपने आपको समझ कर अन्य चीजो से मोह-ममता, मित्रता-शत्रुता छोड दे तो इसकी कर्म जजीर निर्बल होती जायगी और आत्म शुद्धि मे निरन्तर प्रगति करता हुआ कभी यह कर्म जाल से पूर्ण मुक्त भी हो सकता है।

इस तरह ससार मे अपना जन्म-मरण का क्रम बनाये रखना, सासारिक यातनायें भोगना इस जीव की अपनी करनी पर निर्भर है और स सार चक्र से स्वतन्त्र होकर अजर-अमर पूर्ण गुणी होना भी इसकी अपनी करनी पर निर्भर है। साधारण आत्मा जब अपने स्वरूप का अनुभव करके मोह-ममता से दूर रहता हुआ आत्म-शुद्धि के लिये प्रयत्न करता है तब वह महात्मा (महान आत्मा) हो जाता है, साधु, सन्त, महन्त, ऋषि आदि कहलाता है।

वही महात्मा जब अपनी पूर्ण शुद्धि करके सर्वज्ञ वीतराग, निरजन, निर्विकार, अजर, अमर बन जाता है, तब उसकी आत्मा को परमात्मा कहते हैं। भगवान महावीर ने भव्य जनता को करीब-करीब ३० वर्ष पर्यन्त उपदेश दिया, अर्थात् वाणी खिरी। आपका निमित्त पाकर कई भव्य जीवो ने स्वकल्याण किया। भगवान महावीर के गौतमादि ११ गणधर हुये। चन्दन आदि आर्यिकाएं हुई। राजा श्रेणिक मुख्य श्रोताओ मे थे।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन, पौर्वाह्णिक समय मे योग निरोध कर पावानगर के सरोवर मे समस्त कर्मों का क्षय कर दिया तथा मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त कर लिया। अपने को अशरीरी बना लिया। आपने अक्षय पद को प्राप्त किया।

भगवान महावीर का निर्वाण हुये २५०० वर्ष व्यतीत हो गए, मगर हम लोग अभी तक भगवान की जयन्ती आदि मनाते आरहे हैं, और मनाते जायेंगे। भगवान महावीर की जयन्ती मनाने मात्र से हमारा कल्याण हो जाय सो यह तो सम्भव नही। हमारी जयन्ती मनाना तभी सार्थक होगा जब भगवान महावीर के बताये हुये मार्ग पर चलें, सत्य और अहिंसा हमारे चारित्र मे आजाए, दया की लहरें हमारे हृदय मे उमडने लगे, शान्ति की छटा हमारे अन्दर छा जाये, क्रोधादि कषायें हमारे मे न आ पाये, कुव्यसनो की छाया हमारे उपर न पड सके, दुराचरणो से हम दूर रहे तभी हमारा जयन्ती मनाना सार्थक होगा।

भगवान महावीर ने सर्वप्रथम अपना ही सुधार किया, जनता का तो उनके चारित्र मात्र से हुआ। अगर हम भी देश व समाज के कल्याण की इच्छा करते हैं तो सर्वप्रथम हमको सुआचरण अपने मे लाने चाहियें, क्योकि अपने को सुधारने से ही जगत सुधार होना सम्भव है।

भगवान महावीर के दिव्य उपदेश

• हीरालाल, सिद्धान्त शास्त्री

भ० महावीर ने केवल्य-प्राप्ति के पश्चात् भारत-वर्ष के विभिन्न भागो मे विहार कर ३० वर्ष पर्यन्त धर्मोपदेश दिया। उन्होने अपने उपदेशो मे पुरुषार्थ पर ही सबसे अधिक जोर दिया है। उनका स्पष्ट कथन था कि आत्मा-विकास की सर्वोच्च अवस्था का नाम ही ईश्वर है और इसलिए प्रत्येक प्राणी अपने को सासारिक बन्धनो से मुक्त कर और अपने आपको आत्मिक गुणो से युक्त कर नर से नारायण और आत्मा से परमात्मा बन सकता है। इसी सिलसिले मे उन्होने बताया कि उक्त प्रकार के परमात्मा या परमेश्वर को ससार की सृष्टि या सहार करने के प्रपचो मे पडने की कोई आवश्यकता नही रह जाती है। जो यह मानते है कि कोई एक अनादि निधन ईश्वर है, और वही जगत का कर्त्ता, हर्त्ता, एव व्यवस्थापक है, उसके सम्बन्ध मे भ० महावीर ने बताया कि प्रथम तो ऐसा कोई ईश्वर किसी भी युक्ति से सिद्ध ही नही होता है। फिर भी यदि थोडी देर के लिए वैसे ईश्वर की कल्पना भी कर ली जाय तो वह दयालु है या क्रूर ? यदि ईश्वर दयालु है, सर्वज्ञ है, तो फिर उसकी सृष्टि मे अन्याय और उत्पीड़न क्यो होता है ? क्यो सब प्राणी सुख और शान्ति से नही रहते ? यदि ईश्वर अपनी सृष्टि को, अपनी प्रजा को सुखी नही रख सकता तो, उससे क्या लाभ ? फिर यही क्यो न माना जाय कि मनुष्य अपने अपने कर्मों का फल भोगता है, जो जैसा करता है, वैसा पाता है। ईश्वर को कर्त्ता मानने से हम देववादी बन जाते हैं। अच्छा होता है, तो ईश्वर करता है, बुरा होता है, तो ईश्वर करता है, आदि विचार मनुष्य को पुरुषार्थ-हीन बनाकर जनहित से विमुख कर देते हैं। अतएव भ० महावीर ने स्पष्ट शब्दो मे घोषणा की—

"अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठियो ।।"

आत्मा ही अपने दुखो और सुखो का कर्त्ता तथा भोक्ता है। अच्छे मार्ग पर चलने वाला अपना आत्मा ही मित्र है और बुरे मार्ग पर चलने वाला अपना आत्मा ही शत्रु है।

उन्होने और भी कहा—

"अप्पा नई वेयरणी अप्पा मे कूडशाल्मली।
अप्पा काम-दुहा धेणू अप्पा मे नंदनं वनं ।।"

बुरी विचारधारा वाली आत्मा ही नरक की वैतरणी नदी और कूटशाल्मली वृक्ष है और अच्छी विचारधारा वाली आत्मा ही स्वर्ग की कामदुहा धेनु और नन्दन वन है।

इसलिए तुम्हारा दूसरे को भला या बुरा करने वाला मानना ही मिथ्यात्व है, अज्ञान है। तुम्हें

दूसरे को सुख-दुख देने वाला नहीं मानकर अपनी भली-बुरी प्रवृत्तियो को ही सुख-दुख का देने वाला मानना चाहिये। इसके लिये उन्होने समस्त प्राणी मात्र को सबोधन करके कहा—

"अप्पा चैव दमेयव्वो अप्प हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य॥"

बुरे विचारो वाली अपनी आत्मा का ही दमन करना चाहिये। अपने बुरे विचारो को दमन करने से ही आत्मा इस लोक और परलोक दोनो मे सुखी होता है।

उन्होने बतलाया—

"अप्पाणमेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाणमेव अप्पाणं जइता सुहमेहए॥"

विकृत विचारो वाली अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिए बाहिरी दुनियावी शत्रुओ के साथ युद्ध करने से क्या लाभ? अपनी आत्मा का जीतने वाला ही वास्तव मे पूर्ण सुख को प्राप्त करता है।

अपने बुरे विचारो की व्याख्या करते हुए भ० महावीर ने कहा—

"पंचिंदियाणि कोह माण आयं तहेव लोहं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं सव्वमप्पे जिए जियं॥"

अपने पाँचों इन्द्रियो की दुर्निवार विषय-प्रवृत्ति को तथा क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायो को ही जीतना चाहिए। एकमात्र अपनी आत्मा की दुष्प्रवृतियो को जीत लेने पर सारा जगत जीत लिया जाता है।

आत्मा की व्याख्या करते हुए भ० महावीर ने बताया—

"केवलणाणसहावो केवलदंसण-सहाव सुहमइयो।
केवलसत्तिसहावो सो हं इदि चिंतए णाणी॥"

आत्मा एकमात्र केवलज्ञान और केवल दर्शन-स्वरूप है, अर्थात् संसार के सर्व पदार्थों को जानने-देखने वाला है। वह स्वभावत अनन्त-शक्ति का धारक और अनन्त सुखमय है।

परमात्मा की व्याख्या भ० महावीर ने इस प्रकार की—

"मलरहिओ कलचत्तो अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा।
परमप्पा परमजिणो सिवकरो सासओ सिद्धो॥"

जो सर्वदोष-रहित है, शरीर-विमुक्त है, इन्द्रियो के अगोचर है, और सर्व अन्तरग-बहिरग मलो से मुक्त होकर विशुद्ध स्वरूप का धारक है, ऐसा परम निरजन शिवकर, शाश्वत सिद्ध आत्मा ही परमात्मा कहलाता है।

वह परमात्मा कहा रहता है? इसका उत्तर उन्होंने दिया—

"णविएहि जं णविज्जइ, झाइज्जइ झाइएहि अणवरय।
थुव्वतेही थुणिज्जइ देहत्थ किं पि तं मुणह॥"

जो बडे-बडे इन्द्र-चन्द्रादि से नमस्कृत है, ध्यानियो के द्वारा ध्याया जाता है और स्तुतिकारो के द्वारा स्तुति किया जाता है, वह परमात्मा कही इधर-उधर बाहिर नही है, किन्तु अपने इसी शरीर के भीतर रह रहा है।

भावार्थ—वह परमात्मा दूसरा और कोई नहीं है, किन्तु आत्मा ही अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेने पर परमात्मा हो जाता है, अत तू अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करने का प्रयत्न कर।

वह शुद्ध परमात्म-स्वरूप कैसे प्राप्त होता है, इस विषय मे भगवान महावीर ने कहा—

कम्म पुराइउ जो खवइ अहिणव वेसु ण देइ।
परम णिरंजणु जो णवइ सो परमप्पउ होइ॥

जो अपने पुराने कर्मों को—राग, द्वेष, मोह आदि विकारी भावो को दूर कर देता है, नवीन विकारो को अपने भीतर प्रवेश नही करने देता है और सदा परम निरजन आत्मा का चिन्तवन करता है, वह स्वयं ही आत्मा से परमात्मा बन जाता है।

भावार्थ—जैन सिद्धान्त के अनुसार दूसरे की सेवा उपासना से आत्मा परमात्म पद नही पाता, किन्तु अपने ही अनुभव और चिन्तन से परमात्मपद को प्राप्त करता है।

ससार मे प्रचलित सर्व धर्मों के प्रति समभाव रखने का उपदेश देते हुए भगवान महावीर ने कहा—

जो ण करेदि जुगुप्पं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं।
सो खलु णिव्विदिगिच्छो सम्माइट्ठी मुणेयव्वा॥

जो किसी भी धर्म के प्रति ग्लानि या घृणा नही करता, किन्तु सभी धर्मों मे समभाव रखता है, वह निर्विचिकित्सित सम्यग्दृष्टि यथार्थ वस्तु-दर्शी जानना चाहिए।

सर्व धर्मों के प्रति समभाव रखने के निमित्त भगवान महावीर ने नयवाद, अनेकान्तवाद या समन्वयवाद का उपदेश दिया और कहा—

जावंतो वयणवहा तावंतो वा णया वि सद्दाओ।
ते चेव य परसमया सम्मत्तं समुदिया सव्वे॥

जितने भी वचन-मार्ग-भिन्न-भिन्न पथ-ससार में दिखाई दे रहे हैं उतने ही नय हैं और वे ही परसमय या मत है। वे सब अपने-अपने दृष्टिकोणो से ठीक हैं। और उन सब का समुदाय ही सम्यक्त्व है, यानी सत्य का यथार्थ या तात्विक स्वरूप है।

इस एक सूत्र के द्वारा ही भगवान महावीर ने अपने समय की ही नही, बल्कि भूत और भविष्य-काल मे भी उपस्थित होने वाली असख्य समस्याओ का समाधान प्रस्तुत कर दिया। पहला और सबसे बडा हल तो उन्होंने अपने समय के कर्मकाडी क्रिया-प्रधान वैदिक और अध्यात्मवादी वैदिकेतर सम्प्रदाय वालो का किया और कहा—

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हता चाज्ञानिनां क्रिया।
धावन् किलान्धको दग्धः पश्यन्नपि च पंगुलः॥

क्रिया या सदाचार के बिना ज्ञान बेकार है, कोरा ज्ञान सिद्धि को नही दे सकता। और अज्ञानियो की क्रियाए भी निरर्थक हैं, वे भी आत्मसुख को नही दे सकती। जैसे किसी बीहड जगल में आग लग जाने पर चारो ओर भागता हुआ अंधा पुरुष जलकर विनाश को प्राप्त होता है और पंगु-लगड़ा आदमी बचने का मार्ग देखते हुए भी मारा जाता है।

भगवान महावीर ने दोनो प्रकार के लोगो को सबोधित करते हुए कहा—

संयोगमेवेह वदन्ति तज्ज्ञा न ह्येकचक्रेण रथःप्रयाति।
अन्धश्च पंगुश्च वने प्रविष्टौ तौ संप्रयुक्त नगरं प्रविष्टौ॥

ज्ञान और क्रिया का सयोग ही सिद्धि का साधक होता है, क्योकि एक चक्र से रथ कभी नही चल सकता। यदि दावाग्नि में जलते हुए वे अन्धे और लगडे दोनो पुरुष मिल जाते हैं, और अन्धा, जिसे कि दीखना नही, किन्तु चलने की शक्ति है, वह यदि चलने की शक्ति से रहित, किन्तु दृष्टि सम्पन्न पगु को अपने कधे पर बिठा लेता है तो वे दोनो दावाग्नि से निकल कर अपने प्राण बचा लेते हैं। क्योकि अन्धे के कधे पर बैठा पगु मनुष्य चलने मे समर्थ अन्धे को बचने का सुरक्षित मार्ग बतलाता जाता है और अन्धा उस निरापद मार्ग पर चलता जाता है और इस प्रकार दोनो नगर को पहुच जाते हैं और दोनो बच जाते हैं।

इस प्रकार परस्पर मे समन्वय करने से जैसे अन्धे और पगु की जीवन-रक्षा हुई उसी प्रकार भगवान महावीर के इस समन्वयवाद ने सर्व दिशाओ मे फैल कर उलझी हुई असख्य समस्याओ को सुलझाने और परस्पर मे सौहार्दभाव वढाने मे लोकोत्तर कार्य किया ।

इस प्रकार भगवान महावीर ने परस्पर विरोधी अनेक धर्मों का समन्वय किया । उनके इस सर्वधर्म समभावी समन्वय के जनक अनेकान्तवाद से प्रभावित होकर एक महान आचार्य ने कहा है—

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवादस्स ॥

जिसके विना लोक का दुनियादारी व्यवहार भी अच्छी तरह नही चल सकता, उस लोक के अद्वितीय गुरु अनेकान्तवाद को नमस्कार है ।

भगवान महावीर ने धर्म के व्यवहारिक रूप अहिंसावाद का उपदेश देते हुए कहा—

सव्वे पाणा पियाउआ सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पिय-बहा ।
पियजीविणो जीविउकामा णातिवाएज्झ किंचण ॥

सर्व प्राणियो को अपना जीवन प्यारा है, सब ही सुख की इच्छा करते हैं, और कोई दु ख नही चाहता । मरना सब को अप्रिय है और सब जीने की कामना करते हैं । अतएव किसी भी प्राणी को जरा भी दु.ख न दो और उन्हें न सताओ ।

लोगो की दिन पर दिन बढती हुई हिंसा की प्रवृत्ति को देखकर भगवान महावीर ने कहा—

सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं ण मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणिवह घोर णिग्गंथा वज्जयंति ण ॥

सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नही चाहता । इसलिए किसी भी प्राणी का वध करना घोर पाप है । मनुष्य को इससे वचना चाहिए । जो धर्म के आराधक हैं, वे कभी किसी जीव का घात नही करते ।

ऊँच नीच की प्रचलित मान्यता के विरुद्ध भगवान महावीर ने कहा—

जन्म-मत्तेण उच्चो वा णीचो वा ण वि को हवे ।
सुहासुहकम्मकारी जो उच्चो णीचो य सो हवे २ ॥

ऊ ची जाति या उच्च कुल मे जन्म लेने मात्र से कोई उच्च नही हो जाता है । जो अच्छे कार्य करता है, वह उच्च है और जो बुरे कार्य करता है, वह नीच है ।

इसी प्रकार वर्णवाद का विरोध करते हुए भी उन्होने कहा किसी वर्ण-विशेष मे जन्म लेने मात्र से मनुष्य उस वर्ण का नही माना जा सकता । किन्तु—

कम्मणा बभणो होई, कम्मणा होइ खत्तियो ।
कम्मणा वइसो होइ सुद्दो हवइ कम्मणा ॥

मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है और शूद्र भी अपने किये कर्म से होता है ।

भगवान महावीर ने केवल जाति या वर्ण का भेद करने वालो को ही नही, किन्तु साधु सस्था के सदस्यो तक को फटकारा—

ण वि मुंडएण समणो ण ओंकारेण बभणो ।
ण मुणी रण्णवासेण ण कुसचीरेण ताप सो ॥

सिर मु डा लेने मात्र से कोई श्रमण या साधु नही कहला सकता, ओंकार के उच्चारण करने से कोई ब्राह्मण नही माना जा सकता, निर्जन वन मे रहने मात्र मे कोई मुनि नही वन जाता, और न कुशा (डाभ) से बने वस्त्र पहिनने से कोई तपस्वी कहला सकता है । किन्तु—

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बम्भणो ।
णाणेण मुणी होइ, तवेण होइ तापसो ॥

जो प्राणि मात्र पर साम्य भाव रखता है वह श्रमण या साधु कहलाता है, जो ब्रह्मचर्य धारण करता है, वह ब्राह्मण कहलाता है। जो ज्ञान-वान है, वह मुनि है और जो इन्द्रिय-दमन एव कषाय-निग्रह करता है वह तपस्वी है।

इस प्रकार जाति, कुल या वर्ण के मद से उन्मत हुए पुरुषो को भगवान महावीर ने नाना प्रकार से सम्बोधन कर कहा—

स्मयेन यो न्यानत्येति धर्मस्थान गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिर्कैविना ॥

जो जाति या कुलादि के मद से गर्वित होकर दूसरे धर्मात्माओ को केवल नीच जाति या कुल मे जन्म लेने मात्र मे अपमानित एव तिरस्कृत करता है, वह स्वय अपने ही धर्म का अपमान करता है। क्योकि धम धर्मात्मा के बिना निराधार नही ठहर सकता।

अन्त मे भगवान महावीर ने जाति-कुल मदान्ध लोगो से कहा—

कासु समाहि करहु को अंचउ,
छोपु अछोपु भरिणवि को वचउं।
हल सहि कलह केरण सम्माणउ,
जहिं जहिं जोवहू तहिं अप्पाराउ ॥

ससार की जाति कुल-मदान्ध हे भोले प्राणियो, तुम किसे छूत या बड़ा मानकर पूजते हो और किसे अछूत मान कर अपमानित करते हो? किसे मित्र मान कर सम्मानित करते हो और शत्रु मान-कर किसके साथ कलह करते हो? हे देवानां प्रिय मेरे भव्यो। जहा जहा भी मैं देखता हू, वहा-वहा सब मुझे आत्मत्व ही—अपनापन ही दिखाई देता है।

भगवान महावीर के समय मे एक ओर लोग धन-वैभव का सग्रह कर अपने को बडा मानने लगे थे और अहर्निश उमके उपार्जन में लग रहे थे। दूसरी ओर गरीब लोग आजीविका के लिए मारे-मारे फिर रहे थे। गरीबो की सन्तानें गाय-भैंसो के समान बाजारो मे बेची जाने लगी थी और धनिक लोग उन्हे खरीद कर और अपना दासी-दास बना कर उन पर मनमाना जुल्म और अत्या-चार करते थे। भगवान महावीर ने लोगो की इस प्रकार दिन पर दिन बढती हुई भोगलालसा और धन तृष्णा की मनोवृत्ति को देखकर कहा—

जह इंधणेंहिं अग्गी लवणसमुद्दो णदी-सहस्सेंहिं।
तह जीवस्य ण तित्ती अत्थि तिलो्ं वि लद्धम्मि। ॥

जिस प्रकार अग्नि ईन्धन से तृप्त नही होती है, और जिस प्रकार समुद्र हजारों नदियो को पाकर भी नही अघाता है, उसी प्रकार तीन लोक की सम्पदा के मिल जाने पर भी जीव की इच्छाएं कभी तृप्त नही हो सकती हैं।

इसलिए हे संसारी प्राणियो! यदि तुम आत्मा के वास्तविक सुख को प्राप्त करना चाहते हो, तो समस्त परिग्रह का परित्याग करो, क्योकि—

सव्वगंथविमुक्को सीदीभूदो पसण्णचित्तो य।
जं पावइ पीइसुह ण चक्कवट्टी वि तंलहदि ॥

सर्व प्रकार के परिग्रह से विमुक्त होने पर शान्त एव प्रसन्नचित्त साधु जो निराकुलता जनित अनुपम आनन्द प्राप्त करता है, वह सुख, अतुल वैभव का धारक चक्रवर्ती को नही मिल सकता है।

यदि तुम सर्व परिग्रह छोडने मे अपने को असमर्थ पाते हो, तो कम से कम जितने मे तुम्हारा जीवन-निर्वाह चल सकता है, उतने को रख कर शेष के संग्रह की तृष्णा का तो परित्याग करो। इस प्रकार भगवान महावीर ने ससार में विषमता को दूर करने और समता को प्रसार करने के लिए अपरिग्रहवाद का उपदेश दिया।

इस प्रकार भगवान महावीर ने लगातार ३० वर्षों तक अपने दिव्य उपदेशो के द्वारा उस समय

फैले हुए अज्ञान और अधर्म को दूर कर सज्ज्ञान और सधर्म का प्रसार किया। अन्त मे आज से २५०० वर्ष पूर्व कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रात' कालीन पुण्यवेला मे उन्होने पावा से निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान महावीर के अमृतमय उपदेशो का ही यह प्रभाव था कि आज भारतवर्ष से याज्ञिकी की हिंसा सदा के लिए बन्द हो गई, लोगों से छुआछूत का भूत भगा और समन्वय कारक अनेकान्त रूप सूर्य का उदय हुआ। और इन्द्रभूति, वायुभूति अग्नि-भूति आदि बडे बडे वैदिक विद्वानो ने अपने सैंकडो शिष्यो के साथ भगवान का शिष्यत्व स्वीकार किया।

●

भक्त की पुकार

डॉ० कुसुम पटोरिया

वासना से रञ्जित,
हिंसा, द्वेष और स्वार्थ से मलिन,
अनैतिकता और अनाचार से पंकिल
मानवता का श्वेत दुकूल
जर्जरित हो चुका है
इसकी दुर्दशा से
त्रस्त और किंकर्तव्यविमूढ
मानव को तुम्हारी ही शरण है।
हे समर्थ प्रभु!
इसकी पुन स्वच्छ शुभ्रता के लिये,
समत्व जल की वृष्टि कर दो।

ध्यान योगी भगवान महावीर

○ श्री अगर चन्द नाहटा "जैन"

भगवान महावीर विश्व की एक महान विभूति थे। उन्होने दीर्घकालीन साधना द्वारा सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त की। उन्होने भूली-भटकी जनता को मोक्ष का प्रशस्त मार्ग बतलाया। उन्होने जो लोक भाषा मे अपने उपदेश और सन्देश प्रचारित किये, उनका उस समय भी बहुत अधिक प्रभाव पडा और आज भी उनकी वाणी से प्रभावित लाखो व्यक्ति सद्धर्म की समाराधना मे लगे हुए हैं। खेद है, जैन समाज ने भगवान महावीर के कल्याणकारी संदेशो से अपने तक सीमित करके विश्व को जो महान लाभ ऐसे महापुरुष के जीवन और वाणी से मिलना चाहिये था, उससे बहुत अ शो में वचित कर रखा है। भगवान महावीर के निर्वाण को २५०० वर्ष हो गये। इस उपलक्ष मे उनका २५०० वां निर्वाण महोत्सव विशेष आयोजन और उत्साह के साथ मनाने का तय हुआ। उसमे भी अपने को महावीर के भक्त कहलाने वाले कुछ व्यक्ति विघ्न उपस्थित कर रहे हैं, रोडा अटका रहे हैं। स्वय तो कोई ठोस योजना लेकर अहिंसा व जैन धर्म का प्रचार विश्व व्यापी प्रयत्न नही करते; अपितु जो ऐसा प्रयत्न अन्य लोग कर रहे हैं उसमे भी बाधा डालकर कितना अनुचित कर रहे है, वे स्वय सोचें ? भगवान महावीर के जीवन आदर्शों और वाणी पर गम्भीर चिन्तन करके विश्व भर मे उसे प्रचारित करने का यह जो सुअवसर प्राप्त हुआ है, उसको व्यर्थ न खोया जाय।

खेद है, भगवान महावीर की साधनाकालीन जो सबसे बडी विशेषता थी, उस ओर हमारा ध्यान ही नही जा रहा है। केवल उन्होंने अमुक-अमुक कष्ट सहे, इसी की चर्चा हम करते रहते हैं। पर उनका वास्तविक लक्ष्य और साधना क्या थी ? इस पर विचार ही नही किया जाता तो जीवन में अपनाने की बात तो बहुत ही दूर है। उस विशिष्ठ साधना की ओर निम्न प्रकार ध्यान आकर्षित किया जा रहा है।

यह स्वाभाविक है कि जन साधारण किसी या व्यक्ति विशेष के अन्तरभावो को जानने, समझने और पकडने की योग्यता नही रखता या प्रयत्न नही करता और बाह्य तप या कष्टों के प्रति ही अपना ध्यान केन्द्रित कर देता है। उन्ही को महत्व देकर उन्हे अपनाने का यत्किंचित प्रयत्न करता है। यही बात जैन समाज के लिए भी लागू होती है। भगवान महावीर ने लम्बी-लम्बी तपस्याएं कीं और शारीरिक कष्ट सहन किये तो जैन समाज ने उपवास आदि वाह्य तप और कष्ट सहन पर जोर दे रखा है, आभ्यन्तरिक तप की बहुत ही उपेक्षा नजर आती है। अतः साधना द्वारा आत्मा की

निर्मलता-विशुद्धि जो भगवान महावीर ने प्राप्त की, वह हमारे लिए सभव ही नही रही। वीतरागता या समभाव की जो सिद्धि भगवान महावीर ने प्राप्त की, उसमे तो हम वहुत ही दूर हैं। 'जन' की अपेक्षा 'जैन' मे जो विशेषता होनी चाहिये वह हमारे मे दिखाई नही देती।

भगवान महावीर ने १२।। वर्षों तक जो महान साधना की, उस पर गम्भीरता से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि, उपवास आदि बाह्य तपस्या और कष्ट सहन तो उनके लिए सहज प्राप्त बात थी। मूल वात थी ध्यान योग द्वारा समत्व की प्राप्ति। आत्मस्वरूप का दर्शन, ज्ञान और उपलब्धि ही उनकी साधना का लक्ष्य था। दीक्षा ग्रहण करते ही उन्होने जो प्रतिज्ञा वाक्य उच्चारित किया था, वह था— करेमि सामावय सावज्ज जोग पच्चखामि।" अर्थात् मन, वचन, काया और करने कराने और अनुमोदन इन तीन योग और तीन कारणो से मैं सावद्य (पारा) कार्यों का त्याग करता हूँ और समता भाव को स्वीकार करता हूँ। वीतरागता और समभाव एक ही बात है। राग और द्वेष ये विषम भाव हैं, पर भाव हैं। उन्हें छोडकर समभाव या स्वभाव मे स्थित होना ही महावीर का लक्ष्य और उपदेश था। उन्होने अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए ही साधना का कठिन मार्ग अपनाया था। वे अधिक से अधिक समय तक मौन और ध्यान मे ही रहते थे। भूख, प्यास, ध्यान मग्न व्यक्ति को उतनी नही सताती, इसलिए लम्बे लम्बे उपवास सहज ही हो जाते है। जो व्यक्ति ध्यान मे लीन रहता है उसे बाह्य कष्टो की कोई परवाह ही नही होती। उस ओर वह ध्यान नही देता वह जानता है कि यह सब तो शरीर को हो रहे हैं। मैं शरीर नही हूँ, उसमे स्थित सिद्ध स्वरूपी आत्मा-परमात्मा हूँ। जब तक आयुष्य कर्म का सम्बन्ध है, यह शरीर रहेगा ही अत इसको भाड़ा देने या टिकाये रखने के लिए ही आहार पानी की जब आवश्यकता समझी, तब पारणा कर लिया। जब तक ध्यान मे लीनता रही, तब तक सहज ही उपवास आदि तपस्या हो गयी। प्रकृति प्रदत्त कष्टो और दूसरो के दिये हुये या किए हुये उपसर्गों को भी उन्होने सहज ही सहन कर लिया। क्योकि वे देहातीत-आत्मस्वरूप के ध्यान मे मग्न रहते थे। इसलिए वे अधिकतर जगलो, पर्वतो और जन शून्य स्थानो, मन्दिरो, श्मसानो आदि मे खडे होकर नासाग्र दृष्टि से आत्म-चिन्तन मे तल्लीन रहते थे। मौन भी उनका स्वाभाविक क्रम हो गया था। क्योकि ध्यान मे लीन व्यक्ति, बात-चीत नही कर सकता, उसे बोलने की आवश्यकता बहुत ही कम पडती है। सब ओर से मन को खीचकर एकाग्र चित्त से ही ध्यान किया जाता है। बाहरी आकर्षण और प्रवृत्तिया ध्यानी के लिए सहज ही समाप्त या न्यूनतम हो जाती हैं।

ध्यान योगी भगवान महावीर के उस स्वरूप का विशेष विवरण हमे प्राप्त नही है कि उन्होने किस तरह और कैसा ध्यान किया ? पर जो थोडे सूत्र हमे मिलते हैं उनसे यह तो निश्चित है कि साधना काल मे उनका अधिक से अधिक समय ध्यान मे ही बीता है। कायोत्सर्ग और पद्मासन मुद्रा की जो जैन मूर्तिया बनायी गयी हैं वे भी हमे उनके ध्यान मुद्रा की विशिष्ट सूचना देती हैं। हमने थोडी गलती यह अवश्य की कि उन मूर्तियो मे नासाग्र दृष्टि को उतनी प्रधानता नही दी, जितनी कि देनी चाहिये थी। दिगम्बर सम्प्रदाय ने मूर्ति मे आखें बन्द सी करदी तो श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने दृष्टि रखदी या ऊपरी आखें लगादी। मेरी राय मे अब हमे शीघ्र नासाग्र दृष्टि की ओर ध्यान देना चाहिये। न आखें मूर्तियो मे बन्द सी दीखें और न सामने की ओर ताकती हुयीं खुली ही हो। अन्तर मुखी ध्यानस्थ मुद्रा मे नासाग्र दृष्टि बहुत ही महत्वपूर्ण और आवश्यक है। हमारे कान और आख सबसे अधिक बाह्य-मुखी आकर्षण के केन्द्र हैं।

सब समय वे खुले रहते हैं और देखने और सुनने के द्वारा हम सकल्प-विकल्प के जाल मे फसे रहते हैं। भगवान महावीर नासाग्र दृष्टि ध्यान करते थे। अतः वही स्वरूप उनकी मूर्तियो मे होना चाहिये। हमे मदिर मे जाकर उनके ध्यान स्वरूप व विशेष चिन्तन करना चाहिये। जैन मूर्तियो से ध्यान की प्रेरणा लेना बहुत ही आवश्यक एव लाभप्रद है।

ध्यान मे भगवान महावीर क्या चिन्तन करते थे? इसका अधिक विवरण तो नही मिलता पर एक सूत्र मिलता है कि वे एक पुद्गल परमाणु पर ध्यान जमाये हुये थे। अर्थात् मन को इतना एकाग्र कर लिया था कि दूसरी किसी बात पर भी उनका ध्यान ही नही जाता था। जिस समय जिस वस्तु पर चिन्तन करते या एकाग्र होते, उस समय वही मन रमा व जमा रहता था। तभी उनकी आत्म विशुद्धि इतनी अधिक बढ़ती गयी कि केवल्य-ज्ञान अर्थात् विश्व का त्रैकालिक ज्ञान उन्हें प्राप्त हो गया। अनुभूतियो के द्वार पूर्ण रूप से खुल गये, उपयोग लगाने की आवश्यकता नही रही। जिस तरह निर्मल दर्पण मे सामने आये हुए पदार्थ स्वय प्रतिबिम्बित हो जाते हैं, उसी तरह केवल ज्ञान से सहज ही सब बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

ध्यान की परम्परा जैन समाज में क्रमशः क्षीण होती हुयी आज तो विलुप्त सी हो गयी हैं। आवश्यकता है उस ध्यान परम्परा को अधिक से अधिक व अतिशीघ्र चालू करने की। आचार्य तुलसी जी का मैंने इस ओर कलकत्ता मे ध्यान आकर्षित किया था तब से तेरापथी समाज मे इस ओर अच्छी प्रगति हुयी है। सारे जैन समाज को अब अपने पूज्य महावीर की ध्यान योग की परम्परा को विशेष रूप से अपनाने का अनुरोध है।

क्या हमारा समाज के प्रति कोई
दायित्व नही है?
यदि है,
तो फिर
दहेज के दानव से
क्यो नही लड़ते?

धार्मिक सहिष्णुता और तीर्थंकर महावीर

० डा० हुकमचन्द भारिल्ल

सह-अस्तित्व की पहली शर्त है सहिष्णुता। सहिष्णुता के बिना सह-अस्तित्व सभव नही है। ससार मे अनन्त प्राणी हैं और उन्हे इस लोक मे साथ-साथ ही रहना है। यदि हम सबने एक-दूमरे के अस्तित्व को चुनौती दिए विना रहना नही सीखा तो हमे निरन्तर अस्तित्व के सघर्ष मे जुटे रहना होगा। सघर्ष अशाति का कारण है और उसमे हिंसा अनिवार्य है। हिंसा प्रतिहिंसा को जन्म दती है। इस प्रकार हिंसा-प्रतिहिंसा का कभी समाप्त न होने वाला चक्र चलता रहता है। यदि हम शाति से रहना चाहते हैं तो हमे दूसरो के अस्तित्व के प्रति सहनशील बनना होगा। सहनशीलता सहिष्णुता का ही पर्याय है।

तीर्थंकर भगवान महावीर ने प्रत्येक वस्तु की पूर्ण स्वतत्र सत्ता स्वीकार की है और यह भी स्पष्ट किया है कि प्रत्येक वस्तु स्वय परिणमनशील है, उसके परिणमन मे पर-पदार्थ का कोई हस्तक्षेप नही है। यहाँ तक कि परमपिता परमेश्वर भी उसकी सत्ता का कर्ता-हर्ता नही है। जन-जन की ही नही अपितु कण-कण की स्वतन्त्र सत्ता की उद्घोषणा तीर्थंकर महावीर की वाणी मे हुई। दूसरो के परिणमन या कार्य मे हस्तक्षेप करने की भावना ही मिथ्या, निष्फल और दु ख का कारण है क्योकि सब जीवो का जीवन-मरण, सुख दु ख स्वयकृत व स्वयकृत कर्म का फल है। एक को दूमरो के दु ख-सुख जीवन-मरण का कर्ता मनाना अज्ञान है, सो ही कहा है—

> सर्वं सदैव नियत भवति स्वकीय,
> कर्मादयान्मरण जीवित दु ख सौख्यम्।
> अज्ञान मेतदिह यत्तु परः परस्य,
> कुर्यात्पुमान्मरण जीवित दु ख सौख्यम्॥

यदि एक प्राणी को दूसरे के सुख-दु ख और जीवन-मरण का कर्ता माना जाय जो फिर स्वयकृत शुभाशुभ कर्म निष्फल साबित होगे। क्योकि प्रश्न यह है कि हम बुरे कर्म करें और कोई दूसरा व्यक्ति चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यो न हो, क्या हमे सुखी कर सकता है? इसी प्रकार हम अच्छे कार्य करें और कोई व्यक्ति चाहे वह ईश्वर ही क्यो न हो, क्या हमारा बुरा कर सकता है? यदि हा, तो फिर अच्छे कार्य करना और बुरे कार्यों से डरना व्यर्थ है। क्योकि उनके फल को भोगना आवश्यक तो है नही? और यदि यह सही है कि हमे अपने अच्छे-बुरे कर्मों का फल भोगना ही होगा तो फिर पर के हस्तक्षेप की कल्पना निरर्थक है। इसी बात को अमितगति आचार्य ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

> स्वय कृत कर्म यदात्मनापुरा,
> फल तदीय लभते शुभाशुभ।

परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुट,
स्वय कृतं कर्म निरर्थक तदा ।

निजार्जित कर्म विहाय देहिनो,
न कोपि कस्यापि ददाति किंचन ।

विचार यन्नेवमनन्य मानसः,
परो ददातीति विमुच्य शेमुषी ।।

अतः सिद्ध है कि किसी द्रव्य मे पर का हस्तक्षेप नही चलता । हस्तक्षेप की भावना ही आक्रमण को प्रोत्साहित करती है । यदि हम अपने मन से पर मे हस्तक्षेप करने की भावना निकाल दें तो फिर हमारे मानस मे सहज ही अनाक्रमण का भाव जग जायगा । आक्रमण प्रत्याक्रमण को जन्म देता है । यह आक्रमण प्रत्याक्रमण की स्थिति ऐसे युद्ध को प्रोत्साहित कर सकती है जिससे मात्र विश्वशाति ही खतरे मे न पड जाय, अपितु विश्वप्रलय की स्थिति उत्पन्न हो सकती है । अत विश्वशाति की कामना करने वालो को तीर्थंकर महावीर द्वारा बताये गये अहस्तक्षेप, अनाक्रमण और सह-अस्तित्व के मार्ग पर चलना आवश्यक है, इसमे सबका हित निहित है ।

आचार्य समन्तभद्र ने भगवान महावीर के धर्म तीर्थ को सर्वोदय तीर्थ कहा है—

सर्वान्तवत् तद्गुण मुख्यकल्पम्,
सर्वान्तशून्य च मिथोनपेक्षम् ।

सर्वापदामन्तकर निरन्तम्,
सर्वोदय तीर्थमिद तवैव ।।

धर्म के सर्वोदय स्वरूप का तात्पर्य सर्व जीव समभाव सर्व धर्म समभाव, और सर्वजाति समभाव से है । सबका उदय वही सर्वोदय है । अर्थात् सब जीवो को उन्नति के समान अवसरो की उपलब्धि ही सर्वोदय है । दूसरो का बुरा चाहकर कोई अपना भला नही कर सकता है ।

आज हमने मानव-मानव के बीच अनेक दीवारें खडी कर ली है । ये दीवारें प्राकृतिक न होकर हमारे ही द्वारा खडी की गई है । ये दीवारें रग-भेद, वर्ण-भेद, जाति-भेद, कुल-भेद, देश व प्रांत-भेद आदि की है । यही कारण है कि आज सारे विश्व मे एक तनाव का वातावरण है । एक देश दूसरे देश से शकित है और एक प्रान्त दूसरे प्रान्त से । यहा तक कि मानव-मानव की ही नही, एक प्राणी दूसरे प्राणी की इच्छा और आकाक्षाओ को अविश्वास की दृष्टि से देखता है भले ही वे परस्पर एक-दूसरे से पूर्णतः असपृक्त ही क्यो न हो पर एक-दूसरे के लक्ष्य से एक विशेष प्रकार का तनाव लेकर जी रहे हैं । तनाव से सारे विश्व का वातावरण एक घुटन का वातावरण बन रहा है ।

वास्तविक धर्म वह है जो इस तनाव व घुटन को समाप्त करें या कम करे । तनावो से वातावरण विषाक्त बनता है और विषाक्त वातावरण मानसिक शाति भग कर देता है । तीर्थंकर महावीर की पूर्वकालीन एव- समकालीन परिस्थितिया भी सब कुछ मिलाकर इसी प्रकार की थी ।

तीर्थंकर महावीर के मानस मे आत्मकल्याण के साथ-साथ विश्वकल्याण की प्रेरणा भी थी, और इसी प्रेरणा ने उन्हे तीर्थंकर बनाया । उनका सर्वोदय तीर्थ आज भी उतना ही ग्राह्य, ताजा और प्रेरणास्पद है जितना उनके समय मे था । उनके तीर्थ मे न सकीर्णता थी और न मानवकृत सीमायें । जीवन की जिस धारा को वे मानव के लिए प्रवाहित करना चाहते थे, वही वस्तुत सनातन सत्य है ।

धार्मिक जडता और आर्थिक अपव्यय को रोकने के लिए महावीर ने क्रियाकाण्ड और यज्ञो का विरोध किया । आदमी को आदमी के निकट लाने के लिए वर्ण-व्यवस्था को कर्म के आधार पर बताया । जीवन जीने के लिए अनेकान्त की भाव-भूमि, स्याद्वाद की भाषा और अणुव्रत का आचार व्यवहार

दियाँ और मानव व्यक्तित्व के चरम विकास के लिए कहा कि ईश्वर तुम्ही हो, अपने आपको पहिचानो और ईश्वरीय गुणो का विकास कर ईश्वरत्व को पाओ।

तीर्थंकर महावीर ने जिस सर्वोदय तीर्थ का प्रणयन किया, उसके जिस धर्म तत्व को लोक के सामने रखा, उसमे न जाति की सीमा है न क्षेत्र की, और न काल की, न रग, वर्ण, लिंग आदि की। धर्म मे सकीर्णता और सीमा नही होती। आत्मधर्म सभी आत्माओ के लिए एक है। धर्म को मात्र मानव से जोडना भी एक प्रकार की सकीर्णता है, वह तो प्राणी मात्र का धर्म है। 'मानव-धर्म' शब्द भी पूर्ण उदारता का सूचक नही है, वह भी धर्म के क्षेत्र को मानव समाज तक ही सीमित करता है, जबकि धर्म का सम्बन्ध समस्त प्राणी जगत् से है क्योकि सभी प्राणी सुख और शाति से रहना चाहते हैं।

धर्म का सर्वोदय स्वरूप तब तक प्राप्त नही हो सकता जब तक कि आग्रह समाप्त नही हो जाता क्योकि आग्रह-विग्रह पैदा करता है, प्राणी को असहिष्णु बना देता है। धार्मिक असहिष्णुता से भी विश्व मे बहुत कलह व रक्तपात हुआ है, इतिहास इसका साक्षी है। जब-जब धार्मिक आग्रह सहिष्णुता की सीमा को लाघ जाता है तो वह अपने प्रचार व प्रसार के लिए हिंसा का आश्रय लेने लगता है। धर्म का यह दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि उसके नाम पर रक्तपात हुए और वह भी उक्त रक्तपात के कारण विश्व मे घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। इस प्रकार जिस धर्मतत्व के प्रचार के लिए हिंसा अपनाई गई वही हिंसा उसके ह्रास का कारण बनी। किसी का मन तलवार की धार से नही पलटा जा सकता। अज्ञान ज्ञान से कटता है उसे हमने तलवार से काटने का यत्न किया। विश्व मे नास्तिकता के प्रचार मे इसका बहुत बडा हाथ है।

भगवान महावीर ने उक्त तथ्य को भली प्रकार समझा था। अत उन्होने साध्य की पवित्रता के साथ-साथ साधन की पवित्रता पर भी पूरा-पूरा जोर दिया एवम् विचार को अनेकान्तात्मक, भाषा को स्याद्वादरूप, आचार को अहिंसात्मक एवं जीवन को अपरिग्रही बनाने का उपदेश दिया।

अनेकान्तात्मक विचार, स्याद्वादरूपी वाणी, अहिंसात्मक आचार एव अपरिग्रही जीवन ये चार महान सिद्धान्त तीर्थंकर महावीर की धार्मिक सहिष्णुता के प्रबल प्रमाण हैं।

सामूहिक विवाह एक वह उपाय है, जिससे न केवल आर्थिक कठिनाइयो का निवारण ही किया जा सकता है, बल्कि समाज को सही दिशा दी जा सकती है।

तीर्थंकर महावीर का निर्वाण-स्थल : मध्यमा पावा

० डॉ० नेमीचन्द शास्त्री

तीर्थंकर महावीर का निर्वाण मध्यमा पावा अथवा पावापुरी मे हुआ। इस पावापुरी की स्थिति कहाँ पर है ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। वर्तमान मे कुछ व्यक्ति अनुसंधान के नाम पर नये-नये स्थानो पर पुराने क्षेत्रो की कल्पना करने का प्रयास कर रहे हैं। तथ्य कहाँ तक इतिहास-सम्मत है, यह शोध का विषय है। जैन साहित्य के प्राचीन और अर्वाचीन सभी ग्रन्थो मे महावीर का निर्वाण-स्थान पावापुरी वताया गया है। 'कल्पसूत्र' (सूत्र १२३, पृष्ठ ११८, श्री अमर जैन आगम शोध सस्थान शिवाना, राजस्थान) मे तीर्थंकर महावीर के निर्वाण के विषय मे कहा गया है—'महावीर अन्तिम वर्षा-वास करने हेतु मध्यमा पावा के राजा हस्तिपाल के रज्जुकसभा-धर्मगृह मे ठहरे हुए थे। चातुर्मास का चतुर्थ मास और वर्षाऋतु का सप्तम पक्ष चल रहा था; अर्थात् कार्तिक कृष्णा अमावस्या की तिथि थी। रात्रि का अन्तिम प्रहर था। श्रमण, भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए—ससार त्यागकर चले गये · ·।'

दिगम्वर ग्रन्थों मे भी तीर्थंकर महावीर का निर्वाण मध्यमा पावा मे वताया गया है। 'प्राकृत प्रतिक्रमण' (पृष्ठ ४६) मे उल्लेख है—पावाए मज्झिमाए हत्थवालि सहाएनमंसामि, अर्थात् मध्यमा पावा मे हस्तिपाल की सभा मे स्थित महावीर को नमस्कार करता हूँ। इसी तरह आशाधरजी ने भी 'क्रियाकलाप' मे लिखा है—'पावायां मध्यमायां हस्तिपालिका मण्डपे नमस्यामि'।

उक्त उल्लेखो से स्पष्ट है कि महावीर का निर्वाण मध्यमा पावा मे राजा हस्तिपाल की रज्जुकशाला मे हुआ था। अभिलेखो से ज्ञात होता है कि यह रज्जुक शाला धर्मायतन के रूप मे होती थी। यहाँ विशिष्ट धर्मोपदेशक का धर्मोपदेश या प्रवचन होने के लिए पर्याप्त स्थान रहता था। सहस्रो व्यक्ति इस स्थान पर वैठ सकते थे। रज्जुकशाला मे चौरस मैदान के साथ एक किनारे पर भवन स्थित रहता था।

हस्तिपाल कोई वड़ा राजा नहीं था। सामन्त या जमीदार जैसा था। उस युग मे नगराधिपति का भी राजा के नाम से उल्लेख किया जाता था; अतएव यह आशका नही की जा सकती कि मगध-नृपति श्रेणिक के रहते हुए निकट मे ही हस्तिपाल राजा का अस्तित्व क्यो कर सभव है ? महावीर के समय मे प्राय. प्रत्येक नगर का अधिपति राजा कहा जाता था।

इससे अवगत होता है कि हस्तिपाल राजा मध्यमा पावा का स्वामी था और उसकी रज्जुक-शाला मे महावीर का अन्तिम समवशरण लगा था तथा वही उनका निर्वाण हुआ था।

उक्त 'कल्पसूत्र' (सूत्र १२४ और १२७, संस्करण उपर्युक्त) मे यह भी बताया गया है कि जिस रात्रि मे श्रमण भगवान महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए, सम्पूर्ण दु खो से मुक्त हुए उस रात्रि मे नौ मल्लसघ के, नौ लिच्छवि सघ के अर्थात् काशी कौशल के १८ गणराजा अमावस्या के दिन आठ प्रहर का प्रोपवोपवास कर वहाँ उपस्थित थे। उन्होने यह विचार किया कि भावोद्योत ज्ञानरूप प्रकाश चला गया है; अतः अब हम द्रव्योद्योत-दीपावली प्रज्वलित करेंगे। 'कल्पसूत्र' के उपर्युक्त उद्धरण से निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत होते हैं

(१) तीर्थंकर महावीर का निर्वाण राजा हस्तिपाल की नगरी पावापुरी मे हुआ,

(२) निर्वाण के समय नौ मल्लगण, नौ लिच्छवि-गण इस प्रकार काशी-कौशल के १८ गणराजा उपस्थित थे,

(३) अन्धकार के कारण दीपावली प्रज्वलित की गयी थी,

(४) उनका निर्वाण-स्थल मध्यमा पावा था।

अब विचारणीय है कि यह मध्यमा पावा कहाँ है ? प्राचीन भारत मे पावा नाम की तीन नगरियाँ थीं। श्वे जैन सूत्रो के अनुसार एक पावा बगदेश की राजधानी थी। यह देश पारसनाथ पर्वत के आसपास के भूमि-भाग मे अवस्थित था। वर्तमान हजारीबाग और मानभूम के जिले इसी मे शामिल हैं। श्वे. जैन आगम-ग्रन्थो मे भगी जनपद की गणना २५॥ आर्य देशो मे की गयी है। बौद्ध साहित्य मे इसे मलय-देश की राजधानी बताया है। मल्ल और मलय को एक मान लेने से ही पावा की गणना भ्रान्ति-वश मलय देश मे की गयी है।

दूसरी पावा कौशल से उत्तर पूर्व में कुशीनारा की ओर मल्लराजा की राजधानी थी। मल्लजाति के राज्य की दो राजधानियाँ थीं—एक कुशीनारा, दूसरी; पावा। सठिआँव-फाजिलनगर वाली पावा संभवत यही है।

तीसरी पावा मगध में थी, जो राजगृही के निकट इसी नाम से आज भी विश्रुत है। यह उक्त दोनो पावाओ के मध्य मे थी। पहली पावा इसके आग्नेय कोण मे और दूसरी इसके वायव्य कोण मे लगभग समान्तर पर थी। इस कारण यह पावा मध्यमा पावा के नाम से प्रसिद्ध थी।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि इस पावा का सम्बन्ध राजा हस्तिपाल की सभा से है। इस पावा मे श्वे जैन सूत्रों के अनुसार महावीर का दो बार आगमन हुआ था। उनकी दो महत्वपूर्ण घटनाएँ इस नगरी के साथ सबद्ध हैं।

प्रथम बार—केवलज्ञान की प्राप्ति के अनन्तर अगले ही दिन—भगवान् महावीर यहाँ पधारे। उन दिनों मध्यमा पावा में, जो जृम्भक ग्राम से, जहाँ भगवान् महावीर को केवलज्ञान हुआ था, लगभग १२ योजन दूरी थी। आर्यसोमिल बडा भारी यज्ञ कर रहा था। इस यज्ञ मे देश-देशान्तर के अनेक विद्वान् सम्मिलित हुए थे। महावीर इस अवसर से लाभ उठाने की दृष्टि से मध्यमा पावा आये। मध्यमा पावा के महासेन उद्यान ने वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन उनका दूसरा समवशरण लगा। उनका उपदेश एक प्रहर तक हुआ। उपदेश की चर्चा समस्त नगर मे फैल गयी। आर्यसोमिल के यज्ञ मे सम्मिलित हुए इन्द्रभूति आदि ११ विद्वान् ज्ञानमन्द से उन्मत्त हो अपने विद्वान् शिष्यो के साथ महावीर से शास्त्रार्थ करने पहुँचे। उनका उद्देश्य महावीर से विवाद करके उन्हे पराजित कर अपनी प्रतिष्ठा बढाना था, पर वहाँ पहुँचते ही उनका ज्ञानमन्द विगलित हो गया और उन्होंने भगवान् महावीर से श्रमण-दीक्षा ले

ली। इसी दिन महावीर ने मध्यमा पावा के महासेन उद्यान मे चतुर्विध-संघ की स्थापना की।

द्वितीय घटना महावीर के निर्वाण की है। महावीर चम्पा से विहार कर मध्यमा पावा, या अपापा पधारे। इस वर्ष का वर्षावास हस्तिपाल की रज्जुक-सभा मे व्यतीत हुआ। चातुर्मास मे दर्शनो के लिए आये हुए राजा पुण्यपाल ने भगवान से दीक्षा ली। कार्तिकी अमावस्या के प्रात काल अपने जीवन की समाप्ति निकट समझकर अन्तिम उपदेशो की अखण्डधारा चालू रखी।

श्वेताम्बर वाङ्मय के आधार पर प्रस्तुत किये गये उपर्युक्त विवेचन से मध्यमा पावा की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

मध्यमा पावा और जृम्भक ग्राम मे इतना अन्तर होना चाहिये कि जिससे एक दिन मे जृम्भक ग्राम से मध्यमा पावा पहुचा जा सके। यह अन्तर अधिक-से-अधिक १२ योजन दूरी का हो सकता है। उल्लेख है कि तीर्थंकर महावीर का केवलज्ञान-स्थान जृम्भीक ग्राम, अर्थात् जम्भीय ग्राम है। यह ऋजुकूला नदी के तट पर स्थित जमूई गाँव है, जो वर्तमान मुगेर से ५० मील दक्षिण मे स्थित है। यहाँ से राजगृह की दूरी ३० मील, या १५ कोस है। पावापुर और राजगृह की दूरी भी अधिक से अधिक २५ मील है। इस प्रकार जमूई से पावापुर की दूरी १० योजन से अधिक नही है। यदि सठिआँववाली पावा को मध्यमा पावा माना जाय तो जम्भीय ग्राम से यह पावा कम-से-कम १००–१५० मील की दूरी पर स्थित है। इतनी दूरी को वैशाख शुक्ला दशमी के अपराह्न काल से वैशाख शुक्ला एकादशी के पूर्वाह्नकाल तक तय करना सभव नही है।

दूसरी विचारणीय बात यह है कि श्वेताम्बर सूत्र-ग्रन्थो मे बताया गया है कि तीर्थंकर महावीर चम्पानगरी मे चातुर्मास पूर्ण कर जम्भीय गाँव में पहुँचे। वहाँ से मेढीय होते हुए छम्माणि। गये छम्माणि से वे मध्यमा पावा आये। महावीर के इस विहार-क्रम का भौगोलिक अध्ययन करने पर दो तथ्य प्रस्तुत होते है—

(१) छम्माणि ग्राम की स्थिति चम्पा और मध्यमा पावा के मध्यमार्ग पर होना चाहिये। मेढीय ग्राम की दो स्थितियाँ मानी जाती हैं। एक स्थिति तो राजगृह और चम्पा के मध्य की और दूसरा श्रावस्ती और कौशाम्बी के मध्य की। यदि महावीर ने चम्पा से चलकर श्रावस्ती और कोशाम्बी के मध्य वाले मेढीय ग्राम मे धर्मसभा की हो तो कोई आश्चर्य नही है। कहा जाता है कि गोशालक की तेजोलेश्या के प्रयोग के पश्चात् महावीर श्रावस्ती और कौशाम्बी के मध्यवर्ती मेढीय ग्राम के शालिकोष्ठक चैत्य मे पधारे थे। महावीर के विहार-वर्णन मे आता है कि मध्यमा पावा से वे जम्भीय ग्राम गये और वहाँ उन्हे केवलज्ञान हुआ और वहाँ से राजगृह आये।

(२) विहार-वर्णन से पावा की स्थिति और राजगृह के मध्य होनी चाहिये, अत: चम्पा से मध्यमा पावा होते हुए राजगृह गये और वहाँ से वैशाली। अतएव तीर्थंकर महावीर की निर्वाण-स्थली पावा, चम्पा और राजगृह के मध्य होनी चाहिये।

गण राजाओ के वर्णन से पावापुरी की वास्तविक स्थिति के सबध मे निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं :

(१) महावीर के निर्वाण मे नौ मल्ल और नौ लिच्छवि ये १८ गणराजा पावापुरी मे सम्मिलित थे। यदि सठिआँववाली पावा मे वे सम्मिलित होते तो दूरी इतनी अधिक होते

जाती कि उनका वहां निर्वाणोत्सव में सम्मिलित होना असभव हो जाता ।

(२) हस्तिपाल पावापुर का शासक था और यह राजा सिंह का पुत्र था । यदि इसे हम मल्लगण के अन्तर्गत मान लें तो भी अनुचित नही है । अत. चेटक की सहायता नौ मल्लो ने की थी और यह भी उसी मल्लगण के अन्तर्गत था ।

(३) बौद्धो ने जिस पावा मे भोजनग्रहण किया था और जो कुशीनगर के पास सठिआंव के रूप में मान्य है उसका नृपति हस्तिमल्ल नहीं है । हस्तिमल्ल का किसी भी बौद्ध ग्रन्थ मे उल्लेख नही आता । जैन ग्रन्थो मे हस्तिमल्ल महावीर के प्रथम समवशरण मे भी उपस्थित होता है, जिसका सयोजन पावापुरी (नालदा के निकटवर्ती) मे हुआ था । निर्वाण-लाभ करने के समय महावीर ने अपना अन्तिम चातुर्मास हस्तिमल्ल की मध्यमा पावा की रज्जुकशाला मे किया था । अत जैन साहित्यो के प्रचुर प्रमाणो के आधार पर वर्तमान पावापुरी ही तीर्थंकर महावीर की निर्वाण-भूमि है ।

—वीर निर्वाण विचार सेवा, इन्दोर के सौजन्य से

❋ अहिंसा ❋

अहिंसा
'वीर का नही'
कायर का धर्म
दृष्टि उनकी
जो अहिंसा का
मर्म न समझे ।
अहिंसा औ कायरता
परस्पर विरोधी ।
हिंसकवृत्ति
मन मे भय
प्रतिहिंसा की अग्नि
प्रज्जवलित करती ।
जहा भय का भाव
वहा वीरत्व नही ।
अन्याय
अत्याचार के दमन
स्वदेश
आत्मरक्षा हेतु
उठाया हर शस्त्र
अहिंसा की नीव
खोखली नही,
मजबूत करता है ।
कायरता की अपेक्षा
शरीर बल का प्रयोग
कही श्रेष्ठतर ।
हिंसा वह
जहाँ सकषाय
मन, वचन-कर्म से
निश्चय कर की गई हो ।
अहिंसा
प्राणी मात्र के प्रति
दुर्भाव का पूर्ण अभाव ।
यों अहिंसा
प्रेम की पराकाष्ठा
क्षत्रिय-वीर का धर्म ।
एक महाव्रत
औ प्रचड शस्त्र ।

तीर्थंकर महावीर और उनके धर्म का सर्वोदय स्वरूप

० आचार्य राजकुमार जैन

द्वादशवर्षीय कठोरतम तपश्चरण के अनुष्ठान के द्वारा वर्धमान ने आत्मा को विविध योनियों मे भटकाने वाले चतुर्विध घातिया कर्मों का क्षय करके क्रोध-मान-माया-लोभ इन चार कषायो तथा अन्य ईर्ष्या-भय जुगुप्सा आदि आन्तरिक शत्रुओ पर विजय प्राप्त की। ससार मे सर्वाधिक चचल प्रकृति वाले और अत्यन्त कठिनता से वश मे किये जाने वाले मन को आत्मा के अभिमुख केन्द्रित करके उसकी समस्त बाह्य प्रवृत्तियो को अवरुद्ध कर एकाग्र चित्त द्वारा मुनि वर्धमान ने जिस साहस, दृढता एव वीरता का परिचय दिया तथा जिस अभूतपूर्व दृढता से उन्होने अपने कठोरतम तपश्चरण के द्वारा दुर्जेय कर्मों पर विजय प्राप्त की उसमे वे 'महावीर' नाम से जगद्विख्यात हुए। इसके अतिरिक्त दुर्जेय राग-द्वेष, अति विकार भाव तथा क्रोध-मान-माया-लोभ इन कषाय रूप आन्तरिक शत्रुओ के निराकरण मे विक्रान्ति शूर एव महान वीर होने से 'महावीर' कहलाए।

महावीर तीर्थंकर थे। तीर्थंकर वह होता है जो ससार के भव्य जनो को ससार सागर से तार देता है, पार लगाता है। महावीर के कल्याणकारी उपदेशो ने अनेक भव्य जीवो को भव सागर से पार कर दिया। अपने विशिष्ट ज्ञान-दर्शन के आधार पर महावीर तीनो लोक के समस्त जीवो के सम्पूर्ण भावो और सभी अवस्थाओ को जानने व देखने लगे थे, अतः महावीर अर्हंत्, केवली, जिन, सर्वज्ञ और सर्वभावदर्शी बनने के पश्चात् तीर्थंकर महावीर कहलाए। यह तीर्थंकरत्व उन्हे बारह वर्ष की घोर तपस्या, आत्म साधना के बाद प्राप्त हुआ था। जब तक कोई अपने आप को पूर्णत. न साध ले, अपने अभ्यन्तर शत्रु राग-द्वेष और मोह पर विजय प्राप्त न कर ले तब तक वह तीर्थंकर नही हो सकता। जीवो को कर्म बँधन से मुक्ति का उपाय वही बतला सकता है या दूसरो को उपदेश देने का यथार्थ अधिकारी वही है जो स्वय कर्म बधन से मुक्त हो चुका हो। तीर्थंकर की यह विशेषता जब महावीर ने सर्वांशत. प्राप्त करली तो वे तीर्थंकर हो गए और तब ही उनकी दिव्य ध्वनि का पावन प्रवाह जन मानस के अभ्यन्तर कल्मष को धोने मे समर्थ हो सका। यह है उनका सर्व कल्याण कारी मगलमय पावन स्वरूप जो जन जन के लिए अन्तः प्रेरणा का मूल स्रोत है।

वर्धमान के समक्ष आत्म-शुद्धि का एकमात्र महान लक्ष्य था। यही कारण है कि संसार के अन्यान्य भौतिक पदार्थ तथा भोग विलास के विविध साधन उन्हे अपनी ओर आकृष्ट नही कर सके। कुमार वर्धमान के चारो ओर भौतिक पदार्थों का वैभव बिखरा पड़ा था। किन्तु उन्होने उस वैभव की नश्वरता, निःसारता और नीरसता को अपने सहज प्रसूत ज्ञान गाम्भीर्य से समझ कर इस प्रकार

छोड दिया था जैसे कोई जीर्ण तृण को छोड देता है। उनको जीवन की ऐसी असाधारण सुविधाएं उपलब्ध थी जिनका नसीब होना सचमुच दुलभ है। किन्तु ये समस्त साधन सुविधाए अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होने से उन्हे न रोक सकी और अपने निकटतम परम स्नेही बन्धु बान्धवो, परिजनो एव प्रजाजनो के अनुरोध, आग्रह, अनुनय-विनय और प्रार्थनाओ के बावजूद भी उन्होने तपस्वी जीवन की कठोरताओ को सहज भाव से स्वीकार किया।

निरन्तर बारह वर्ष तक सतत साधना, कठोरतम तपश्चरण एव एकाग्र चित्तवृत्ति ने उनकी आत्मा को इतना उन्नत बना दिया कि वे परमात्म तत्त्व के एकदम निकट पहुँच गए। निरन्तर द्वादशवर्षीय घोरतम तपश्चरण एव कठोर साधना का पुण्य फल उन्हे तेरहवें वर्ष के प्रारम्भ मे प्राप्त हुआ। वह पुण्यफल था 'केवलज्ञान की प्राप्ति।' यह चरम अणुत्तर एव उत्कृष्ट केवलज्ञान इतना अनन्त निरावरण एव अव्याहत होता है कि मनुष्य इसकी प्राप्ति के अनन्तर देव-असुर-मानव-तिर्यंच प्रधान इहलौकिक समस्त पर्यायो का अविच्छिन्न रूप से ज्ञाता बन जाता है। इस प्रकार महावीर ने साधना के द्वारा तीर्थंकरत्व प्राप्त किया। तीर्थंकरत्व की प्राप्ति के अनन्तर भगवान महावीर लगातार तीस वर्षों तक निरपेक्ष भाव से जगत को आत्म शुद्धि और आत्म-कल्याण का पावन उपदेश देते रहे।

प्राणिमात्र के कल्याण के लिए तीर्थंकर महावीर की दिव्य-वाणी का यह उद्घोष था कि जीवमात्र मे स्वतन्त्र आत्मा का अस्तित्व विद्यमान है। प्रत्येक जीव को जीवित रहने और आत्म स्वातन्त्र्य का उतना ही अधिकार है, जितना दूसरे को है। अत स्वय जीओ और दूसरो को जीने दो। जिस प्रकार अपने जीवन मे कोई बाधा तुम्हे सह्य नही है उसी प्रकार दूसरो के जीवन मे भी बाधक मत बनो। धर्म के बाह्य आडम्बरपूर्ण क्रिया-कलापो, मिथ्यावाद और रूढ़िगत परम्पराओ मे मत फसो। अपनी आत्मा का स्वरूप और उसकी स्वतन्त्र सत्ता पहचानो, वही सच्चा धर्म है। सहज क्रिया मात्र धर्म नही है, वह तो उसका बाह्य रूप है और बाह्य रूप भी उसे तब कहा जा सकता है जब आत्मा के भीतर वास्तविक धर्म की प्रतिष्ठा हो। धर्म एक त्रिकालाबाधित सत्य है, वह किसी सकुचित दायरे मे आबद्ध नही है। जाति, वर्ग, सम्प्रदाय, लिंग, योनि, क्षेत्र और काल की मर्यादाएं उसे बाध नही सकती और न ये समस्त भाव उसकी मर्यादा हो सकते हैं। यथार्थ रूप से सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय ही उसका शब्दगम्य लक्षण है।

तीर्थंकर महावीर ने जिस तीर्थ का प्रणयन किया है और उसके द्वारा जिस धर्मतत्त्व को मानव लोक के सम्मुख रखा है उसका स्वरूप सर्वोदय है। उस धर्म मे न जाति का बधन है और न क्षेत्र की सीमा है, न काल की मर्यादा है और न लिंग का प्रतिबध है, न ऊच-नीच का भेदभाव है और न आग्रह की अनिवार्यता है। आत्मजयी 'जिन' द्वारा प्रतिपादित आचार और विचार दोनो धर्म हैं। अत धर्म जब आत्मा की खुराक बनकर आता है तब इस प्रकार की सीमाए, बाधाएं, बधन, मर्यादा और प्रतिबध सब कुछ समाप्त हो जाते हैं और वह सर्वथा उन्मुक्त स्वच्छद प्रवाह मे प्रवाहित होता है। जब वह आत्मा के लिए है तब सम्पूर्ण विश्व के समस्त आत्माओ के लिए वह क्यो न आवश्यक होगा ? जिस प्रकार शरीर के लिए आवश्यक हवा, पानी आदि की सीमाएं स्वीकृत नही हैं उसी प्रकार धर्म की सीमा कैसे स्वीकृत की जा सकती है। हवा और पानी के उन्मुक्त प्रवाह की भाँति धर्म के उन्मुक्त प्रवाह को भी सीमाबद्ध नही किया जा सकता। वह स्वच्छद है और अनादि काल से प्रवाहित है।

धर्म के साथ केवल मानव का सम्बन्ध जोडना भी एक सकीर्णता है। वह तो प्राणि मात्र के आनन्दात्मक स्वरूप को प्राप्त करने का साधन है।

कीट, पतंग, मृग, पशु, पक्षी और मनुष्य आदि समस्त प्राणि किसी न किसी रूप मे उससे लाभान्वित हो सकते हैं। मनुष्य के अन्त.करण मे यदि धर्म ठीक रूप से उतर जाय तो उससे केवल उसको ही लाभ नही होगा अपितु पशु, पक्षी, कीट, पतग, लता, गुल्म, पेड, पौधे आदि समस्त जीवो को मनुष्य की ओर से अभय मिल जाने के कारण जीवन मे अपेक्षाकृत शाति प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार प्राणि मात्र के लिए कल्याणकारी और उभय लोक हितकारी धर्म के स्वरूप का प्रतिपादन भगवान महावीर ने किया। यह जीवमात्र के प्रति सर्वोदय की भावना से अनुप्राणित था।

धर्म के चाहे कितने ही रूप क्यो न हो, अहिंसा उन सब मे ओतप्रोत रहेगी। धर्म प्राणि जीवन की एक ऐसी स्फूर्ति है जिसका स्थान ससार की कोई वस्तु नही ले सकती और यह प्रेरणा धर्म व अहिंसा से ही प्राप्त हो सकती है। जिस मनुष्य मे यह स्फूर्ति और प्रेरणा नही होती वह पशु होता है, उसमे हिंसा की परम्पराए प्रज्वलित होती रहती हैं। जब तक अन्त करण मे धम प्रतिष्ठित रहता है अहिंसा की प्रेरणा से मनुष्य मारने वाले को भी नही मारता। किन्तु जब वह उसके मन से निकल जाता है तब औरो की कौन कहे पिता अपने पुत्र की और पुत्र अपने पिता की हत्या करने के लिए भी तत्पर हो जाता है। यह कुकृत्य करते हुए उसे तनिक भी लज्जा का अनुभव नही होता। वस्तुत धम ही जगत की रक्षा करने वाला होता है।

भगवान महावीर का तीथ वास्तव मे सर्वोदय तीर्थ है। किसी तीर्थ धम मे सर्वोदयता तब ही आ सकती है जब उसमे साम्प्रदायिकता, पारस्परिक वैमनस्य और हिंसा के लिए कोई स्थान न हो तथा जाति, कुल, वर्ग, भेदभाव आदि के अभिमान से वह सर्वथा रहित हो। यह तब ही हो सकता है जब प्रत्येक मनुष्य के विचार मे अपेक्षावाद का उपयोग किया जाय और मनुष्य का मन किसी भी प्रकार के आग्रह से सर्वथा मुक्त हो। अभिमानी और आग्रही व्यक्ति जब तक विवेक बुद्धि से अपने मन का परिष्कार कर उसे सुसस्कृत नही कर लेता उसे यथार्थ धर्म स्वरूप की प्राप्ति नही हो सकती। जो धर्म केवल रुढियो, अधविश्वासो, परम्पराओं और मिथ्या मान्यताओ से जीता है वह धर्म नही निरा पाखड है। धर्म जीवन की वह सच्चाई है जिसमे माया, मिथ्यात्व और निदान भोगासक्ति नही होते। यही कारण है कि धर्म को कभी रुढियों से जीवन प्राप्त करने की स्फूर्ति नही मिलती। व्यावहारिक दृष्टि से विरोध मे सामजस्य, कलह मे शाति तथा जीवमात्र के प्रति आत्मीयता का भाव उत्पन्न होना ही सच्चा धर्म है और उसी से मानव समाज व प्राणी मात्र का कल्याण सम्भव है।

धर्म का सर्वोदय स्वरूप तब तक मनुष्य को प्राप्त नही हो सकता जब तक कि उसके मन का आग्रह दूर नही हो जाता। क्योकि आग्रह ही विग्रह पैदा करता है और विग्रह से मन मे अनेक बुराइयां उत्पन्न होकर अशाति पैदा होती हैं। वस्तुत मन की हिंसा का नाम आग्रह है और जब वही आग्रह बाहर आ जाता है तब वह बाह्य हिंसा का रूप धारण कर लेता है। जहा हिंसा होती है वहा धर्म किसी भी रूप से टिक नही सकता। अत. धर्म का स्वरूप समझने और उसे जीवन मे प्रवाहित करने के लिए हिंसा का परिहार आवश्यक है। वर्तमान मे हिंसा का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया है। आज मनुष्य के प्रतिक्षण के आचरण मे हिंसा व्याप्त हो चुकी है। उसका मन, वचन, काय हिंसा से पूर्णत व्याप्त है। हत्याएं, आगजनी, लूटपाट और अपहरण तक ही हिंसा का दायरा सीमित नही है, अपितु व्यक्ति और समाज का शोषण, अनीति, अन्याय, जमाखोरी, मुनाफाखोरी, जीवन की आवश्यक वस्तुओ मे मिलावट, घूसखोरी, भ्रष्टाचार आदि अन्याय प्रवृत्तिया भी हिंसा की परिधि मे समाविष्ट हैं। ये सारी क्रियाए आज मनुष्य अपने लिए आवश्यक समझता है। यही कारण है कि

आज धर्म मनुष्य के जीवन से दूर हो गया है। वर्तमान मे धम केवल दिखावटी वाह्य क्रियाग्रो तक ही रह गया है। अन्त करण मे उतरने की उसे छूट नही है। अत धर्माचरण रहित मनुष्य का पथभ्रष्ट होकर पतनोन्मुख होना स्वाभाविक है। यह भी काल की एक विडम्बना है।

वर्तमान परिस्थितियो मे मनुष्य के जीवन का आमूल परिष्कार नितान्त आवश्यक है। इसके बिना मन का सस्कार और आचरण की शुद्धता सम्भव नही है। अत वस्तु स्वरूप और धर्म के प्रति श्रद्धा भाव रखना, उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर समन्वय रूप से उसे समझना तथा आचरण की परिशुद्धि के साथ उसे जीवन मे उतारने का प्रयत्न करना ही वास्तविक धम का मूल है। यही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र है। इसकी आनुषगिक धाराए हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप नियम तथा क्षमा, मृदुता ऋजुता आदि गुण। वर्तमानकालीन सघर्ष की अग्नि से परिदग्ध समाज को जीवमात्र के कल्याण और उत्कर्ष की भावना से ओतप्रोत इस धम मूलक रत्नत्रय के परिशीलन की नितान्त आवश्यकता है। सामाजिक समता और विश्वशाति का यही एकमात्र निदान है।

महावीर के धर्म के सर्वोदय स्वरुप का एक अपरिहार्य अग अनेकान्त है। यह व्यावहारिक दृष्टि से विरोध मे सामजस्य और कलह मे शाति स्थापित कर मनुष्य मे समझौते की भावना उत्पन्न करता है और सहयोग मूलक समाज रचना पर जोर देता है। जब हम घट-पट आदि सामान्य जड पदार्थों का स्वरूप भी अनेकान्त के बिना नही समझ सकते तब आत्मा की खुराक बनकर आने वाले धर्म का स्वरूप उसके बिना कैसे समझ सकते है? अनेकान्त जहा निष्पक्ष और यथार्थ दृष्टिकोण की सक्षमता का द्योतक है वहा वह जीवन की विषमता और व्यावहारिक कठिनाइयो को दूर करने मे भी समर्थ है।

धर्म के सर्वोदय स्वरूप मे पापी के अहकार की उत्तेजना नही होती और न लोक मूढता आदि का आतक होता है। उसमे प्रत्येक वस्तु लक्षण, प्रमाण, नय और निक्षेप के द्वारा परखी जाती है। धर्म के सर्वोदय स्वरूप मे केवल वही सामाजिकता पनप सकती है जिसमे न तो किसी प्रकार का शोषण हो और न ऊंच-नीच का भेदभाव। मानव केवल मानव हो और उसकी महत्ता का मूल्याकन बिना किसी भेदभाव के गुणो के आधार पर हो, न कि जाति कुल, पद, प्रतिष्ठा, धन और वैभव आदि के आधार पर। उसमे सहयोग, सह अस्तित्व, सह प्रतिष्ठा आदि मानवोचित गुणो पर बल दिया गया हो।

तीर्थंकर महावीर की देशना की यह विशेषता रही है कि वह प्रत्येक व्यवस्था को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार परिवर्तित करने की उपयोगिता का समर्थन करती है। परम्पराओ की अपेक्षा वहा परीक्षा, तर्क और दलीलो को अधिक श्रेय प्राप्त है। दया, धर्म, त्याग, सहिष्णुता, समाधि आदि समस्त मानवीय गुणो के चरम विकास का समर्थन करते हुए भी यहाँ किसी भी व्यवस्था या प्रतिबन्ध नही किया गया। भगवान के सर्वोदय तीर्थ मे हर जगह निरतिवादी व्यवस्था को महत्व दिया गया है। धर्म के सर्वोदय स्वरूप को हम सर्व–जीव–समभाव, सर्व–धर्म–समभाव और सर्वजाति–समभाव के रूप मे समझ सकते है। यहा मनुष्यकृत विषमताओ के लिए कोई स्थान नही है, चाहे वे कितनी ही पुरानी क्यो न हो।

महावीर ने धर्म के जिस सर्वोदय स्वरूप का प्रतिपादन किया उसे हम उस विश्व धर्म की सज्ञा दे सकते हैं जिसके मूल मे अहिंसा की प्राण प्रतिष्ठा की गई हो और जिसमे सर्वाशत अहिंसा का मर्म व्याप्त हो। समस्त प्राणियो का कल्याण करने वाला, जीवात्माओ का अभ्युत्थान करने वाला और मानव समाज के आध्यात्मिक विकास मे परम सहायक के रूप मे सर्वोदय धम अहिंसा धर्म है, विश्वधर्म है।

महावीर : कितने ज्ञात, कितने अज्ञात

० जमनालाल जैन

भगवान महावीर के विषय मे कुछ भी लिखना बड़ा मुश्किल है। वह अत्यन्त अद्भुत व्यक्तित्व था। उसे व्यक्तित्व कहना भी अल्पता है। वे व्यक्तित्व से ऊपर उठ गये थे। पकड़ मे आने जैसा उनका व्यक्तित्व था ही नही। उन्हे कहाँ से पकड़ा जाए, कहाँ से ग्रहण किया जाए, यह तय करना उन लोगो के लिए भी कठिन था जो उनके समय जीवित थे, उनके आसपास उपस्थित थे और जो समग्र रूप से उनकी वाणी को झेलने मे तत्पर थे। बरसो तक महावीर का पदानुसरण करने के उपरान्त भी वे लोग भटक गये। बुद्ध जैसे ज्ञानी और श्रेणिक जैसे नृपति भी उस गहरे और अव्यक्त व्यक्तित्व की थाह न पा सके जिसे महावीर जी रहे थे और फैला रहे थे।

महावीर का आना हमारे लिए, हजारों हजार वर्षों के लिए एक घटना हो गयी है। हम इस घटना पर गर्व करते हैं और कहते हैं कि वह न भूतो न भविष्यति है; लेकिन महावीर के लिए यह घटना अगण्य थी, न कुछ थी। वे घटनाओ की शृंखला से उत्तीर्ण हो चुके थे। ससार मे लिप्त आँखें घटनाओ की कीमत पर व्यक्तित्व की महत्ता का मूल्यांकन करती हैं, तुला पर व्यक्तित्व को तोलती हैं। हम घटनाओ द्वारा व्यक्तित्व को आँकने के अभ्यस्त हो गये हैं। महावीर ने अपने को घटना मे घटित होने से इन्कार कर दिया। शरीर के साथ, शरीर-सबधो के साथ; ससार के बीच जो कुछ होता है, वह सब भरमाने वाला है, भटकाने वाला है। शरीर अगर राख होने वाला है तो उससे सस्पर्शित समस्त घटनाएँ भी राख होने वाली हैं। इसका कोई शाश्वत मूल्य नही है। अगर महावीर के जीवन मे घटनाएँ नही मिलती हैं तो हम परेशान होते हैं चिंतित होते हैं, बेचैन होते हैं और अपने को दीन-दरिद्र समझते हैं।

सचमुच अव्यक्त चेतना मे और ऊर्जा मे जीने वाले, आनन्द-लोक मे, प्रकाश मे विचरण करने वाले को समझना और अपने जीवन मे उतारना अत्यन्त कठिन है। महावीर यो सबको सुलभ थे, सबके समक्ष समुपस्थित थे और आज भी वे प्रतिक्षण प्रकाशमान हैं, लेकिन हमारी बाह्य आँखें बाहर भटकनेवाली इन्द्रियाँ उनको देख नही पा रही हैं, क्योकि हम बाह्यता पर लुब्ध हैं, विमोहित हैं। हमारी निष्ठा की परिधि वस्तुगत, पदार्थगत और घटनागत है। व्यापक-विराट् अव्यक्त दर्शन का अभ्यास हमारी इन्द्रियो को रहा ही नही।

हम घटनाओ के द्वारा परमता को, आत्मत्व को उपलब्ध करने के आकांक्षी हैं, जबकि महावीर आत्मत्व को उपलब्ध होकर घटनाओ को तटस्थ भाव से देखते हैं और उनमे प्रविष्ट हो जाते हैं। हम धर्म और क्रिया द्वारा अहिंसक बनने की प्रक्रिया अपनाते हैं और हिसाब लगाते हैं कि इतना-कुछ

घटित हो जाने पर मुक्ति उपलब्ध होगी, परन्तु महावीर विलक्षण हैं। वे अहिंसक पहले से हैं और उसी के आलोक मे ससृति की घटनाओ के साक्षी बनते हैं। अहिसा उनकी आत्मा थी, हमारे लिए वह साध्य है। हम घटना के द्वारा, क्रिया के द्वारा, व्रत के द्वारा, चर्या के द्वारा अहिंसा की साधना मे सलग्न हैं। यह प्रक्रिया अपने मे द्वैतपरक है, हिंसक है, यह बात महावीर ही जान सकते थे, क्योकि उनकी चेतनता अद्वैत को, एकरूपता को, समग्रता को उपलब्ध हो गयी थी।

हम निषेध की, अस्वीकार, त्याग की, छोडने की, पलायन की भाषा मे और चर्या मे सोचते हैं। हम इतने बाह्य और गणित प्रिय हैं कि आकडो से और वस्तुगत परिधि से परे को देख नही पाते हैं। महावीर विधेय की, स्वीकार की, ग्रहण की प्रक्रिया मे विचरते थे। उनके लिए ग्रहण मे भी त्याग था और त्याग मे भी ग्रहण। उनके लिए त्याग और ग्रहण मे कोई अन्तर नही रह गया था। हम वस्तु के, वस्त्र के, रस के, भोजन के त्याग को साधना समझते हैं और उस साध्य को प्राप्त करना चाहते हैं जो इन सबसे अतीत है। हमे त्याग से दुख की उपलब्धि होती है, क्योकि हम केवल त्याग के बोझ को स्वीकार करते हैं और उसका प्रदर्शन करते हैं। अगर हम नग्न हैं तो भी यह दिखाना चाहते हैं कि लोग हमारे नग्नत्व को, दिगबरत्व को जानें, हमारे त्याग को कीमत दें।

महावीर ने जो कुछ छोड़ा, वह छोडा नही था, वह आपोआप छूट गया था, क्योंकि उन्हें उत्कृष्ट या विराट उपलब्ध हो गया था। निकृष्ट को छूटना ही था। नसैनी का जब ऊपरी डडा हाथ आ जाता है तो नीचे का डडा अपने आप छूट जाता है। उसे छोडने का प्रयास नही करना पडता है। जब बढिया वस्तु हाथ लगती है तो घटिय अपने आप छूट जाती है। महावीर ने क्या-क्या छोडा था यह शायद वे स्वय न बता सके। पर हम बता सकते हैं, एक पूरी तालिका दे सकते हैं कि हमने क्या-क्या छोडा, क्योकि हम छोडकर प्राप्त करने की आशा या अभीप्सा मे तन को गलाते हैं। महावीर इतने आनन्दोपलब्ध थे, ज्ञानचेतना से भरे थे कि बाहर का अपने-आप छूट गया।

सत्य और मिथ्या को जाचने की कसौटी बाह्यता कतई नही हैं। बाहर से हिंसक दीखने वाली घटना मे भी परम अहिंसा हो सकती है और अहिंसक दीखने वाली घटना भी घोर हिंसामय हो सकती है। इसीलिए महावीर घटना से अधिक उसकी आतरिक भूमिका को, उसके रहस्य को महत्व देते थे। इसी अर्थ मे वे ज्ञाता-दृष्टा थे और इसी के लिए अनेकान्त की कसौटी उन्होने प्रस्तुत की। किताबी कानून या संहिता ऐसे लोगो के लिए बेमानी होती है। महावीर जैसे दृष्टा-ज्ञाता ही जान सकते है कि बाह्यत दीखने वाली अहिंसा के भीतर कितना आग्रह, कितना अहकार और दर्प है।

महावीर सहज नग्न थे, सहज विहारी थे, वीतरागी थे, लेकिन उनकी छवि को भी हमारी आखें बिना रागद्वेष के नही निहार सकती। उनकी सर्वांगसुन्दर सहज मूर्ति मे भी हम 'अश्लीलता' को ढाकने का 'बाल' प्रयास करते हैं। अपनी भोगाकाक्षा, काया-शक्ति की तृप्ति भी हम प्रतिकार के द्वारा करना चाहते हैं।

जो ग्रन्थ और ग्रन्थियो से सर्वथा मुक्त थे, उनको हम ग्रन्थो मे खोजना चाहते हैं और ग्रन्थो मे आबद्ध करना चाहते है, क्योकि हम स्वय प्रमाण बनने के बदले ग्रथ-प्रामाण्य मे विश्वास करते हैं। जिन्हे स्वय का विश्वास नही होता, जिन्हें अपने पथ का ज्ञान नही होता, वे ही ग्रन्थ और पन्थ मे उलझते है। ग्रन्थो से हम अपनी चर्या तय करते हैं। ग्रथ के मरे हुए सत्य को हम अपना जीवन-धर्म

बना लेते हैं। महावीर के पीछे ग्रन्थो का ढेर लगा कर हम महावीर के व्यक्तित्व को विस्मृत कर गये हैं। उनका जीवन्त, तेजस्वी व्यक्तित्व ग्रन्थो मे छिप गया है। अब हम उनकी देह के साथ अपने को एक रूप करने के प्रयास मे सलग्न हैं। परिणामतः राजनीति और अर्थनीति हम पर हावी है। यह महावीर ही जानते थे कि ग्रन्थो का सत्य सजीव नही होता, क्योकि सत्य निरन्तर नया होता है और वह सर्वथा वर्तमान मे ही रहता है। अतीत तो स्मृतिमात्र होता है।

आत्मा से टूटा हुआ हमारा संपूर्ण जीवन-धर्म की नाटकीयता से ओतप्रोत है। स्वतन्त्र चिंतन और चरित्रशीलता तो दूर, कुछेक क्षणो के लिए धर्म स्थानो में किया जाने वाला धर्म-ध्यान भी हमे आत्मा से नही जोड पाता। धर्म जीवन से विलग हो गया है, जबकि वही सपूर्णता है जहा हमारा घर-आंगन और समग्र जीवन धर्ममय, अहिंसामय, संयममय और तपोमय बनना चाहिये था—मदिर बनना चाहिये था वहा विपरीत घटित हो गया। मदिर हम इसलिए जाते हैं मानो एक पारम्परिक दासता है जिसे निभाना है। जो उत्कृष्ट मंगल था, वह अर्थ और प्रतिष्ठा के हाथो पडकर तिरस्कृत बन गया है।

दोष युग का नही है, चेतनता की अनुभूति का है कि विगत ढाई हजार वर्षों मे कोई महावीर जैसा जीवन्त धर्म-पुरुष इस धरा पर अवतरित न हो पाया। यह इतिहास या अन्वेषण का विषय भी हो सकता है, लेकिन इससे अधिक आत्माभिमुख होने का भी है। ग्रन्थ और पन्थ से, परम्परा और प्रक्रियाओ से उत्तीर्ण हुए बिना महावीरत्व की अनुभूति सभव ही नही है।

—वीर निर्वाण विचार सेवा, इन्दोर के सौजन्य से

सफलता की कुञ्जी : स्वाध्याय

० भँवरलाल पोल्याका

एक शास्त्रकार का कथन है—'न हि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते'। अर्थात् इस ससार में ज्ञान से अधिक पवित्र अन्य कोई पदार्थ नही है। यदि हम चिराग लेकर सम्पूर्ण विश्व का चक्कर लगावें तो भी हम ज्ञान से अधिक पवित्र कोई अन्य पदार्थ प्राप्त नही कर सकते, यह निश्चित तथ्य है। ज्ञान ही आत्मा का धर्म है, गुण है। ज्ञान को आत्मा से पृथक नही किया जा सकता। ज्ञान और आत्मा का तादात्म्य सम्बन्ध है, समवाय सम्बन्ध नही, जैसा कि दण्डधारी मनुष्य का दण्डे के साथ होता है। वह अग्नि और उष्णता के सम्बन्ध की तरह है। जिस प्रकार अग्नि से उष्णता पृथक् नही की जा सकती उसी प्रकार ज्ञान को आत्मा से पृथक् नही किया जा सकता। अत ज्ञान की आराधना आत्मा की आराधना है। पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति ही आत्मतत्व की उपलब्धि है और वह ही मुक्ति है। ज्ञान के इसी महत्व का अ कन कर एक शास्त्रकार ने कहा है—'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' मुक्ति प्राप्ति का यदि कोई साधन है तो वह ज्ञान ही है अर्थात् ज्ञान साधन भी है और साध्य भी।

ज्ञान का महत्व आध्यात्मिक दृष्टि से ही नही लौकिक दृष्टि से भी है। नीतिकार ने कहा है—

विद्या ददाति विनय विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥

भाव यह है कि विद्या से विनय, विनय से योग्यता, योग्यता से धन, धन से धर्म और धर्म से सुख की प्राप्ति होती है, जो कि प्रत्येक जीव की चरम इच्छा है। हित की, इष्ट की प्राप्ति तथा अहित, अनिष्ट की अप्राप्ति ही सुख का लक्षण है।

साराँश यह है कि अभ्युदय और नि श्रेयस दोनो की प्राप्ति के लिए ज्ञान पहली शर्त है। बिना ज्ञान के न लौकिक सुख की प्राप्ति सभव है और न पारलौकिक सुख की ही। ज्ञान के इसी महत्व के कारण गृहस्थ के षडावश्यको मे स्वाध्याय को भी प्रमुख स्थान प्राप्त है। गृहस्थ के करणीय जो दैनिक षडावश्यक कार्य हैं, वे हैं—देव पूजा, गुरु की उपासना, स्वाध्याय, सयम, तप और दान।

प्राय ऐसा समझा जाता है कि स्वाध्याय की आवश्यकता पारलौकिक ज्ञान प्राप्ति के लिये है, लौकिक ज्ञान से उसका कोई सम्बन्ध नही है; किन्तु वास्तव मे ऐसा है नही। स्वाध्याय की आवश्यकता लौकिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए भी उतनी ही है जितनी कि पारलौकिक, आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति के लिए। लौकिक शिक्षा से अभिप्राय ऐसी शिक्षा से है जो हमे आर्थिक दृष्टि से इस लोक मे स्वतत्र रख सकें, हमें अर्थ के लिए दूसरो की गुलामी न करनी पडे। क्योकि लौकिक स्वतन्त्रता के अभाव मे मानव निश्चिन्त नहीं हो सकता और अचिन्त

मानव इस लोक मे तो सफल हो ही नही सकता, परलोक भी उसका सुधर नही सकता ।

स्वाध्याय शब्द के दो अर्थ हैं— १. "स्वस्य अध्यात्म तत्वविद्याया: अध्यात्म विद्या निश्चय-नयेन यत्-शुद्धावस्था वर्णन तस्या, तत्वविद्याया जीवादिसप्तत त्वाना च यज्ज्ञान सा तत्वविद्या अनयोपाठ. हित रुपमध्यन स्वाध्याय उच्यते ।" अर्थात् जीव की शुद्ध अवस्था तथा सात तत्वो का एव चौदह गुणस्थान, मार्गणा, जीव समास आदि विषयो का जिन ग्रन्थो मे वर्णन है उन ग्रन्थो का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है ।

२. "शोभनो अध्याय —स्वाध्याय अथवा सुष्ठुआ मर्यादया अध्ययन-अध्यापन स्वाध्याय." अर्थात् किसी विषय का भले प्रकार पूर्ण रूप से अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। किसी विषय मे पारंगत होने की कुन्जी भी शास्त्रकारो ने स्वाध्याय के भेद-प्रभेद करते हुए बताई है जो इस प्रकार है—

यदि हमे किसी भी विषय का भली प्रकार ज्ञान प्राप्त करना है तो सबसे पहले इसके लिए आवश्यक है कि हम उस विषय की पुस्तको को इस प्रकार पढे कि उस पुस्तक के प्रत्येक शब्द का अर्थ हमारी समझ मे भली प्रकार आ जावे । यदि दूसरो को वह पुस्तक सुनावे अथवा पढावें तो भी शब्दो और उसके अर्थो का भली प्रकार ज्ञान कर लेना आवश्यक है । इसे ही स्वाध्याय का पहला भेद 'वाचना' शास्त्रकारो ने बताया है । भाषा का 'बाचना' शब्द इस ही से निकला है ।

स्वाध्याय का दूसरा भेद है पृच्छना, जो भाषा मे परिवर्तित होकर पूछना बन गया है । यदि ग्रन्थ का अध्ययन करते समय विषय स्पष्ट न हुआ हो अथवा किसी शब्द का अर्थ न आया हो या विषय और अर्थ दोनो ही न समझ मे आए हो तो अपने से विशिष्ट ज्ञानी से पूछकर उस कमी को पुरा कर लेना चाहिए । पूछने से स्वय के अज्ञान की कमी तो दूर होती ही है दूसरे को यदि किसी विषय का परिपूर्ण ज्ञान कराना है, उसके सशयों को दूर करना है, उसे कोई विषय याद कराना है तो प्रश्न पूछना इसका अत्युत्तम उपाय है । पहले के अध्यापक इसी प्रकार पूछ पूछ कर छात्रो को पाठ याद कराया करते थे । पूछने का उद्देश्य किन्तु ज्ञान की वृद्धि एव अज्ञान की निवृत्ति होना चाहिए किसी की हसी उडाना, उसके अज्ञान को दूसरे के समक्ष प्रकट करना अथवा किसी से वाद-विवाद उत्पन्न करना नही होना चाहिए; नही तो उसमे हिंसा का समावेश हो जावेगा और मनोरथ के साफल्य की एक प्रतिशत भी आशा नही रहेगी ।

वाचना और पृच्छना के पश्चात् नम्बर आता है अनुपेक्षा का । अनुपेक्षा का अर्थ है चिन्तन करना, मनन करना । जिस पुस्तक को भी हमने पढा-पढाया है, समझा है उस विषय का हम बार २ चिन्तन करें, मनन करें । जब भी अवकाश हो उस पर विचार करे । इससे वह पढा हुआ विषय याद होता रहेगा और जहाँ हमारी कमी होगी वह भी हमारे सम्मुख आ जावेगी और इस प्रकार उस विषय की कमी को जान उसे दूर करने मे हमारी प्रवृत्ति हो सकेगी ।

वाचना, पृच्छना और अनुप्रेक्षा के पश्चात् है आम्नाय का नम्बर । आम्नाय का अर्थ यहाँ परम्परा से चली आ रही धार्मिक परम्परा या रुढि से कतई नही है जैसा कि तेरह पथ आम्नाय, बीसपथ आम्नाय आदि शब्दो मे है । यहाँ आम्नाय का अर्थ है पढी हुई पुस्तक को बार-बार दोहराना । दोहराने से वह विषय हमारे मस्तिष्क मे पूरी तरह जम जावेगा और वह फिर कभी भी विस्मृत नही होगा । यह दोहराना रटना नही होना चाहिए अपितु प्रत्येक शब्द और उसके अर्थ को हृदयंगम करते हुए होना चाहिए । तब ही दोहराना

कारी हो सकेगा। बिना समझे रटना कभी भी फलदाई नही हो सकता। इसलिए रट्टू विद्यार्थी परीक्षा मे प्राय फैल हो जाते हैं, क्योकि वे बिना समझे ही रटना चालू कर देते हैं। जबकि जरूरी यह है कि पहले समझें और फिर रटें।

सबसे अन्त मे नम्बर आता है उस विषय पर भाषण देने का, पढाने का। भाषण देना, पढाना भी अपेक्षित विषय की पूर्णज्ञान प्राप्ति मे सहायक है, किन्तु इससे पूर्व वाचना, पृच्छना अनुप्रेक्षा और आम्नाय द्वारा उस विषय मे पारगत होना आवश्यक है। पहले के अध्यापक इसीलिए कक्षा मे पढाने आने से पूर्व न केवल पाठ्य पुस्तको को अपितु उस विषय से सम्बन्धित अन्य पुस्तको का भी अध्ययन करते थे। तभी वे सफल अध्यापक होते थे। आज के अधिकांश अध्यापक जो अपने कर्त्तव्य कर्म मे प्राय असफल दृष्टिगोचर होते हैं उसका एक मात्र कारण यह ही है कि वे इस ओर से उदासीन रहते है और इसीलिए छात्र उन्हे चुटकियो मे उडा देते हैं। विश्वास कीजिए जिस अध्यापक का अपने विषय पर पूर्ण अधिकार होता है छात्र भी उसका अवश्य सम्मान करते हैं।

दुख की बात यह है कि आज हमने शास्त्रो को केवल परलोक तक ही सीमित मान रखा है और इसीलिए आज का भौतिक युग का मानव उनकी कोई उपयोगिता अपने जीवन मे समझता नही। जबकि तथ्य इसके विपरीत है। शास्त्र न केवल पारलौकिक जीवन जीने का मार्ग बताते है अपितु वे सफल सांसारिक जीवन जीने का ढग भी बताते है। इसीलिए शास्त्रकारो ने धर्म का लक्षण करते हुए उसे परलोक मे सुख देने वाला ही नही बताया है अपितु उससे इस लोक मे भी सुख की प्राप्ति होती है ऐसा कहा है। स्वाध्याय का यह लौकिक स्वरूप भी हमे आज जनता की ओर विशेषकर छात्र वर्ग के सम्मुख रखना चाहिए।

आज के छात्र की सबसे बडी समस्या है परीक्षा मे पास होना क्योकि आज योग्यता की उतनी कीमत नही है जितनी कि उस कागज के टुकड़े की जो कि परीक्षा मे सफल होने के बाद मिलता है। उसके बिना मानव की कही पूछ नही, कही नौकरी नही मिल सकती। इसीलिए आज का छात्र येन-केन प्रकारेण परीक्षा मे पास होना चाहता है। इसके लिए वह उचित अनुचित सब प्रकार के साधन काम मे लेने से भी नही हिचकता और आज इसके भयकर परिणाम हमारे सामने आ रहे हैं। आज के छात्र की योग्यता वह नही रही है जो स्वतन्त्रता मिलने से पूर्व थी। यदि हमे इस स्थिति से निकलना है तो हमे छात्रो की योग्यता बढाने के लिए ऊपर बताए स्वाध्याय के प्रकारो का आश्रय लेना होगा। तब ही प्रत्येक विषय के निष्णात छात्र हमे उपलब्ध हो सकेंगे और तभी भारत अपनी भावी पीढी के प्रति नि शक हो सकेगा। नही तो अयोग्य पीढी के हाथो देश का भविष्य क्या होगा यह लिखने या कहने की आवश्यकता नही। उस स्थिति की तो कल्पना ही भयावह है।

विवाह मे फिजूल
खर्ची से
समाज गिरता है

महावीर की भाषा-क्रान्ति

० डॉ० नेमीचन्द जैन

विगत शताब्दियों मे जो भी क्रान्तियाँ घटित हुई हैं, उनमे भाषा की अर्थात् माध्यम की क्रान्तियाँ अधिक महत्व की है। भाषा का सदर्भ बडा सुकुमार और सवेदनशील सदर्भ है, यही कारण है कि कुछ लोग उसे जानबूझकर टाल जाते है और कुछ उसकी समीक्षा मे समर्थ ही नही होते। असल मे भाषा सपूर्ण मानव-समाज के लिए एक विकट अपरिहार्यता है। उसका सबध सामान्य से विशिष्ट तक बडी घनिष्ठता का है उसके बिना न सामान्य जी सकता है, न विशिष्ट। इसे भी यह चाहिए, उसे भी। वह एक निरन्तर परिवर्तनशील विकासोन्मुख अनिवार्यता है। ज्यो-ज्यो मनुष्य बढता-फैलता है, उसकी भाषा त्यो-त्यो बढती-फैलती है। उसका अस्तित्व जीवन-सापेक्ष है, इसीलिए हम उससे बिलकुल बेसरोकार रह नही सकते। वह इतनी नजदीक है, जरूरी है, कि उसकी अनुपस्थिति मे जीवन की समग्र साहजिकता ठप्प हो सकती है।

जीवन का हरेक क्षण भाषा के बहुविध संदर्भों मे साम लेता है। भाषा जहाँ एक ओर सुविधा है, वही दूसरी ओर उसने अपने प्रयोक्ता से ही इतनी शक्ति अर्जित कर ली है कि वह एक खतरनाक औजार भी है। उसमे सृजन, सुविधा और सहार तीनो स्थितिया स्पन्दित है। बहुधा यही होता है कि भाषा के दो पक्ष वक्ता-श्रोता पूरी तरह कभी जुड नही पाते हैं, सप्रेषण की प्रक्रिया मे। सारी सावधानी के बावजूद भी कुछ रह जाता है जिस पर 'वक्ता-श्रोता दोनो को पछताना होता है। वह पास लाकर भी सारी दूरियो का समाधान नही कर पाती। भगवान महावीर ने भाषा की इस असमर्थता को गहराई मे समझा था। उन्होने अनुभव किया था कि एक ही भाषा के बोलने वालो के बीच ही भाषा ने दूरिया पैदा करली है। सामान्य और विशिष्ट एक ही युग मे दो भाषाओ का उपयोग करते हैं, यद्यपि मूलत वे दोनो एक ही होती हैं। स्रोत मे एक, किन्तु विकास स्तरो पर दो भिन्न सिरो पर। महावीर ने अपने युग मे भाषा की इस खाई को, इस कमजोरी को जाना। उन्होने देखा पडित बोल रहा है, आम आदमी उसके आतक मे फँसा हुआ है। उसकी समझ मे कुछ भी नही है, किन्तु पडितवर्ग उस पर थोपे जाता है स्वय को। दोनो एक ही जमाने मे अलग-अलग जीवन जी रहे है। महावीर को यह असगति कचोट गयी। उन्होने आम आदमी की पीडा को पकडा और उसी की भाषा को अपने जीवन की भाषा बनाया, क्योंकि उनके युग तक धर्म का, दर्शन का जो विकास हो हो चुका था वह भाषा की क्लिष्टता और परिभाषाओ के वियावान मे भटक गया था। आम आदमी इच्छा होते हुए भी अध्यात्म की गहराइयो में भाषा की खाई के कारण उतर नही पाता था। महावीर ने आम आदमी की इस कठिनाई को

माना, समझा और अध्यात्म के लिए उसी के औजार को अंगीकार किया। उन्होने पडितो की भाषा को अस्वीकार किया, और सामान्य व्यक्ति की भाषा को स्वीकारा। यह क्रान्ति थी महान् युग-प्रवर्तक। आम आदमी को अस्वीकृत होते कई सदिया बीत चुकी थी। महावीर और बुद्ध के रूप मे दो ऐसी शक्तियो का उदय हुआ, जिन्होने आम आदमी के चेहरे को पहिचाना, उसकी कठिनाइयो को सहानुभूतिपूर्वक समझा और उसी के माध्यमो का उपयोग करना स्वीकार किया।

भगवान् महावीर ने धर्म के क्षेत्र मे जिस लोक-क्रान्ति का श्रीगणेश किया, वह अद्वितीय थी। उन्होने भाषा के माध्यम से वह सब ठुकरा दिया जो विशिष्टो का था। वे मुठ्ठी-भर लोगो के साथ कभी नही रहे, उन्होने सदैव जन-समुद्र को अपनाया। इसलिए वे कूद पडे सब कुछ ठुकरा कर सर्वहारा की कठिनाइयो के समुद्र मे। उन्होने धन को द्वितीय किया, भाषा को द्वितीय किया, सत्ता को द्वितीय किया आदमी को प्रथम किया। भगवान ने उन सारे सदर्भों को द्वितीय कर दिया जो अलगाव का अलख जगा रहे थे, जो उनकी समकालीन चेतना को क्रमहीन और खण्डित कर रहे थे। उन्होने महल छोडा, पांव-पांव चले, पात्र छोडे, पाणिपात्रता को स्वीकार किया, वस्त्र छोडे, नग्नता को माना-सहा, उस परिग्रह को जो मन के बहुत भीतर गुजलके मारे बैठा था, ललकारा और घर बाहर किया। भाषा के क्षेत्र मे भी उन्होने वही किया जो जीवन के सारे सदर्भों के साथ किया। एक तो वे वर्षों मौन रहे, जब तक सब कुछ उन पर खुल नही गया; क्योकि वे साफ-साफ देख रहे थे कि लोग अस्पष्टताए बाट रहे हैं। कही कुछ भी आलोकित नही है, विश्वास तक अन्धा हो गया था। इसलिए उन्होने साफ-सुथरी परिभाषा-मुक्त भाषा मे लोगो से आमने-सामने बात की और जीवन के सदर्भों को, जो जटिल और पेचीदा दिखायी देते थे, खोल कर रख दिया।

भाषा मे कितनी अपार ऊर्जा धडकती है, इसे महावीर जानते थे, इसीलिए उन्होने उस भाषा का उपयोग नही किया जो सदर्भ खो चुकी थी वरन् उस भाषा को स्वीकार किया, व्यवहार मे लिया जो उपस्थित जीवन-मूल्यो को समायोजित करने की उदार ऊर्जा रखती थी। अर्द्धमागधी मे वह ऊर्जस्विता थी जिसकी खोज मे भगवान् थे। जो भाषा एक जगह आकर ठहर गयी थी, महावीर ने उसमे बोलने से इनकार कर दिया। उन्होने उस भाषा का इस्तेमाल किया जो जन-जन को जोडती थी, ऊर्जस्विनी थी और शास्त्रीय औपचारिकताओ से परे थी। शास्त्र की पराजय ही महावीर की जय है, जहा शास्त्र ठहर गया है, महावीर वही से आगे बढा है। महावीर स्थिति नही है, गति है। वह रुकती नही है, विकास करती है। महावीर ने भाषा की इस शक्ति को, उसके व्यक्तित्व के इस पक्ष को, पलक मारते समझ लिया और तपस्या के उपरान्त जो पाया उसे उसी के माध्यम से आम आदमी से लेकर विशिष्ट जन तक बडी उदारता से बांट दिया।

महावीर तक आते-आते सस्कृत हथियार बन चुकी थी सास्कृतिक शोषण-दमन का। वह रूढियो और अन्धी परम्पराओ की शिकार हो चुकी थी। एक तल पर आकर ठहर गयी थी। अध्यात्म उसकी इस जड स्थिति के कारण सवाद खो चुका था। वह सीमित हो गया था। महावीर ने उसकी इस असमर्थता को समझा और लोकभाषा को अध्यात्म का माध्यम चुना। उन्होने भाषा की धोखाधडियो से लोकजीवन को सुरक्षित किया। सरल अध्यात्म, सरल माध्यम और सम्यक् मार्ग। जीवन के हर क्षेत्र मे उन्होने सम्यक्त्व के लिए समझ पैदा करने का पराक्रम किया। यह पहला मौका था जब उन्होने जीवन को जीवन की भाषा मे उन्मुक्तता से प्रकट होने की क्रान्ति को घटित किया। इसीलिए महावीर की भाषा सुगम थी, सबके लिए खुली थी। उन्होने ऐसी भाषा के व्यवहार की स्वीकृति दी जो उस

समय की वर्तमानता को झेल सकती थी, पचा सकती थी। उन्होंने भाषा के उस स्तर को जो सस्कृत का पुरोगामी था, अपनी क्रान्ति का माध्यम बनाया।

महावीर की समकालीन चेतना एक तीखे भाषा-द्वन्द्व से गुजर रही थी। सस्कृत और लोकभाषाए द्वन्द्व मे थी। सस्कृत के पास परम्परा की अन्धी ताकत थी, लोकभाषा के पास ऊर्जा तो थी, किन्तु उसका बोध नही था। सस्कृत सीमित होकर प्रभावहीन हो चली थी, लोकभाषाएं असीमित होकर प्रभावशालिनी थी। जो हालत अ ग्रेजी के संदर्भ मे हिन्दी की है; प्राकृत और अर्द्धमागधी की वही स्थिति महावीर के युग मे सस्कृत के सदर्भ में थी। आम आदमी को अंग्रेजी के लिए दुभाषिया चाहिये। हिन्दी के लिए बीच की कोई औपचारिक कडी की आवश्यकता ही नही है। वही हाल अर्द्धमागधी या पाली का था, वहा किसी बिचोलिये की जरूरत नही थी। सीधा सपर्क था। महावीर ने बिचोलिया-सँस्कृति को भाषा के माध्यम से समाप्त किया। उन्होने उस माध्यम का उपयोग ही नही किया जिसे बिचोलिये काम मे ले रहे थे। यह क्रान्ति थी, जिसकी आम आदमी प्रतीक्षा कर रहा था। भाषा की पारिभाषिकता अचानक बिखर गयी और चारो ओर चिन्तन के खुले मैदान दिखायी देने लगे। यह था महावीर का व्यक्तित्व जो बुद्ध मे होकर कबीर और गांधी तक निरन्तर चला आया है।

महावीर की सर्वोपरि शक्ति भाषा थी। अर्द्धमागधी या लोकभाषा निर्बल की बल राम थी। महावीर की भाषा को 'दिव्यध्वनि' कहा गया। यह कोई रहस्यवादी शब्द नही है। दिव्यध्वनि वह, जो सबके पल्ले पडे; और अदिव्य वह जो कुछेक की हो और शेष जिससे वचित रह जाते हो। महावीर की दिव्यध्वनि अपने युग के प्रति पूरी तरह ईमानदार है, वह सुबोध है, और अपने युग के तमाम सदर्भों से जुडी हुई है। महावीर के दो उपदेश-माध्यम हैं. उनका जीवन और उनके समवशरण। समवशरण मे बोलचाल की भाषा का तल तो हैं ही, वहाँ जीवन का भी एक तल पूरी आभा और तेजस् में प्रकट है। पशुजगत् भी वहां है और महावीर को समझ रहा है। महावीर भाषा मे हैं, भाषातीत है। उन्हे समझ मे आ रहे हैं, जो भाषा नही जानते, और उन्हे भी समझ मे आ रहे हैं जो भाषा के भीतर चल रहे हैं। उनका जीवन स्वय माध्यम है। उनकी करुणा और वीतरागता स्वयं भाषा है। आज मन्दिर भले ही पाखण्ड और गुरुडम के अड्डे हो किन्तु मूर्तियो के पीछे वही दिव्यध्वनि काम कर रही है, जो समवशरण में सक्रिय थी। मूर्ति के लिए कौन-सी भाषा चाहिये भला? उसकी करुणा और वीतरागता को न सस्कृत चाहिये, न अर्धमागधी, न प्राकृत, न अपभ्र श, न हिन्दी, और न अ ग्रेजी। इसलिए महावीर की भाषा-क्रान्ति इतनी शक्तिशाली साबित हुई कि उसने भाषा की सारी धोखाधडियाँ समाप्त कर दी और धर्म की ठेकेदारी बन्द कर दी। भाषा के सदर्भ मे आज फिर महावीर को घटित करने की जरूरत है। जैनो को अपने सारे शास्त्र अर्धमागधी, प्राकृत और अपभ्र श के बन्धन से मुक्त कर लेने चाहिये। कोई उद्धरण नही, कोई परिभाषा नही, सीधी बात, आमने-सामने दो टूक बात। जैनाचार्यों ने ऐसा ही किया है, अपने-अपने युगो मे।

महावीर की भाषा-क्रान्ति को समझने के लिए दो शब्दो को समझने की जरूरत है. 'ज्ञान' और 'समझ'। 'जानना' 'समझना' नही हैं, 'नोइंग इज नॉट अंडरस्टेंडिंग"। ज्ञान और सम्यग्ज्ञान मे नोइंग और अडरस्टेंडिंग का फर्क है। ज्ञान मे हम जानते हैं समझते नही हैं, सम्यक् ज्ञान मे हम जानते भी हैं, और समझते भी हैं। समझना कई बार भाषा की अनुपस्थिति मे भी गठित होता है। वह गहरी चीज है। मर्म की पकड उसके सपूर्ण आयामो मे "समझ" है, शब्द की या परिस्थिति की पकड केवल

एक ही ग्रामाय में ज्ञान है। महावीर ने अण्डरस्टैंडिग की ओर ध्यान दिया। और यह परम्परित भाषा या शास्त्र से सम्भव नही था, इसके लिए साफ-सुथरा जीवन-तल चाहिये था। महावीर की भाषा-क्रान्ति की सबसे बडी विशिष्टता यही है कि उसने लोकजीवन की समझ को पुनरुज्जीवित किया। शास्त्र को खारिज किया और सम्यग्ज्ञान को प्रचलित किया। आज के अभिशप्त आम आदमी को भी महावीर मे एक सहज स्थिति का अनुभव हो सकता है।

महावीर की भाषा-क्रान्ति की एक और खूबी यह थी कि वह आधुनिकता को झेल सकती थी। महावीर तब तक मौन रहे जब तक उन्हे इन्द्रभूति गौतम जैसा अत्याधुनिक नही मिल गया। गौतम सब जानता था, उसे परम्परा का बोध था, युगबोध था; किन्तु सब खण्डित, असमग्र, क्रमहीन; महावीर के ससर्ग ने उसमे एक क्रम पैदा कर दिया। वह उस समय की सडी-गली, जर्जरित व्यवस्था का ही अ ग था किन्तु उसमे सामर्थ्य थी जूझने की। वह आधुनिक था भगवान महावीर के युग मे। भगवान इस तथ्य को जानते थे। उन्होने अपने ज्ञान का खजाना इन्द्रभूति पर उन्मुक्त कर दिया। भाषा की जिस क्रान्ति को महावीर ने घटित किया इन्द्र-भूति मे वह स्थिति उपस्थित है। महावीर से वह छुपी हुई नही है। इस तरह महावीर ने अपनी समकालीन आधुनिकता को भाषा के माध्यम से सम्बन्धित किया और अध्यात्म को जर्जरित होने से बचाया। महावीर को भाषा के क्षेत्र मे पुन पुनः घटित करने की आवश्यकता से हम इनकार नही कर सकेंगे।

—वीर निर्वाण विचार-सेवा, इन्दौर के सौजन्य से

युवा आक्रोश–एक चिन्तन

० ज्ञानचन्द बिल्टीवाला

आज हमे चारों ओर अशान्ति, आन्दोलन, तोड़-फोड और पकड-धकड के दर्शन हो रहे हैं। रोज अखबार इन्ही खबरो से रगे जा रहे हैं। क्या इन घटनाओ से समाज सुधर रहा है, समाज मे आनन्द और शान्ति बढ रहे हैं? अभी नही तो क्या निकट भविष्य मे आशा की जा सकती है?

चोरो को दण्ड मिलना ही चाहिए। कहते हैं—चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल मे चोरो के हाथ-पाव काट दिये जाते थे। पर ये 'चोर' तो गाव-गाव मे खुल कर चोरी कर रहे है, बाजार मे, बस मे जेब काट रहे हैं। न पकडे जाते हैं और न उनकी खबरें अखबारो मे छपती है। आज तो हर छोटा-बड़ा व्यापारी, सरकारी कर्मचारी, एम. एल. ए. एम. पी. और मिनिस्टर एक दूसरे वर्ग द्वारा चोर माने जा रहे हैं। स्वतन्त्र भारत से पूर्व या तो लोग चोर थे ही नही या उन्हे चोर माना नही जा रहा था। कम से कम इतना शोर उस समय इस बात का नही था जितना आज है। क्या यह शोर व्यक्ति को नैतिक और धार्मिक बनाने मे सफल होगा?

जिस प्रकार के दर्शन मे आज का व्यक्ति श्वास ले रहा है वह भौतिकवादी दर्शन है। इसके अनुसार शरीर और इन्द्रियो का सुख प्राप्त करना जीवन की सबसे बडी सार्थकता है। इस दर्शन से लोभ, ईर्ष्या, द्वेष को ही बढावा मिल सकता है—सतोष, सयम को नही। यदि व्यक्ति अपने पास सुविधायें एकत्रित कर सके तो चोर बनने से भी नही झिझकता। यदि नही कर सका तो सुविधा-सम्पन्न लोगो से ईर्ष्यालु बन उन्हें चोर कहता है, तोड फोड करता है। न सुविधा-सम्पन्न बन वह अपने जीवन मे आध्यात्मिक–शान्ति सृजन कर मानव जीवन को कृतार्थ अनुभव करने की कुछ बात कर पाता। न अल्प सुविधा भोगी रहकर ही वह शरीर और इन्द्रिय सुख की दिशा से मुँह मोड़-कर अपने में ज्ञान, आनन्द को तलाश कर पाता। इस प्रकार चोरी करने वाले और दूसरो को चोर कहने वाले दोनो ही प्रकार के लोग आधुनिक भौतिक-वादी दर्शन के शिकार बने हुए परेशान हैं।

चोरी खराब चीज है, वह बन्द होनी ही चाहिए। लेकिन इससे मुक्ति तो आध्यात्मिक मूल्यो को स्वीकार करने वाले व्यक्ति और समाज के लिये ही सभव है। आध्यात्मिक मूल्यो को स्वी-कार करने वाला व्यक्ति अन्य की भौतिक सम्पन्नता को देखकर ईर्ष्या-द्वेष नही करता। वह तो उसे करुणा का पात्र समझता है कि वह अपनी शक्ति और समय व्यर्थ के धन सग्रह मे लगा रहा है। आज के भौतिकवाद दर्शन ने धन को हमारा प्राण बना दिया है। जिसके बढने से हम बढते हैं और घटने से घट जाते हैं। आध्यात्मिक मूल्यो को स्वीकार

करने वाला व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ को सीमित कर अपना उपयोग (ध्यान) अपने मे ज्ञान वृद्धि करने, आनन्द के स्रोत उमडाने मे लगाता है। प्रसिद्ध अमेरिकी दार्शनिक थोरो की भाति वेश-कीमती पेपर वेट को रोज झाडने मे समय खर्च करने के स्थान पर वह मस्तिष्क को झाडकर अज्ञान हटाने मे अधिक विश्वास करता है।

"हम जीवें-सब-जीवें"—यह कोई बहुत ऊँची घोषणा नही है। गिनी हुई जीवन की घडियो मे थोडा कम अधिक सुविधाओ मे जी लेने की बात में उलझा हुआ मनुष्य बडा दुर्भाग्यग्रस्त है। आज की सारी शिक्षा हमे इसी स्तर पर पुर्नानिबद्ध कर आध्यात्मिक बौनापन और दुर्बलता प्रदान कर रही है और हम इसी के गिनने मे उलझ गये है। हमारे श्वासो मे कितनी मात्रा खुशबु और कितनी मात्र बदबू की है। और जितना-जितना हमारा ध्यान इस खुशबू और बदबू पर केन्द्रित होता जाता है, खुशबू भी बदबू मे परिणित होती जाती है और हमारा दम घुटता जाता है। हम कहना सीखें कि 'हम' सम्भव हो तो सब, आत्मा के आनन्द और शान्ति मे जीयें'—तो जीना तो सहज बन ही जायेगा और जीने के कुछ अर्थ भी होगे।

बहुत आवश्यक है कि मिथ्या भौतिकवादी दर्शन से आज हम अपना पिण्ड छुडालें और जैन धर्म द्वारा प्रतिपादित मनुष्य के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण पहलुओ को भली-भाँति समझें। मनुष्य मूलत चेतन तत्व, आत्मा है। कर्मकृत शरीर जैसे निभता चले सो ही ठीक है। उसको बनाने और टिकाये रखने की मुख्य जिम्मेदारी कर्मों की है—हम उन्हें ही सौंपें, स्वय पर व्यर्थ का बोझा न ओढें। हम तो अपने मे ज्ञान, आनन्द की वृद्धि कर मिले हुए मनुष्य जीवन का लाभ उठालें।

इस प्रकार की अन्तरमुखी दृष्टि बन जाने पर शान्ति और आनन्द को पीते हुए व्यक्ति को कहाँ फुरसत है कि वह चोर को भी चोर कहे—जिनका चोर होना प्रमाणित नही हुआ उन्हें चोर मानने का तो प्रश्न नही। ज्ञात हो जाने पर भी कि यह चोर है वह उसे करुणा का पात्र ही लगेगा और वह समझने की कोशीश करेगा कि वह कौनसी परिस्थितियाँ हैं, जिनके कारण यह चोरी करता है? यह कहाँ तक दोषी स्वय है और क्या इसे सुधारा जा सकता है? उसका विश्लेषण उसे स्पष्ट करेगा कि वह भौतिकवादी दर्शन प्रथम परिस्थिति है जो व्यक्ति लोभ ग्रस्त कर चोरी की ओर प्रवृत्त कर रहा है। तब क्या युवा-आक्रोश एक चोर को पकड कर उस पर बरसने मे अपनी कृतार्थता समझ लेगा और समस्या के मूल पर चोर का जीवन के प्रति व्यापक आध्यात्मिक दृष्टि का समाज मे प्रसार नही करेगा। व्यापक रूप से व्याप्त बेईमानी के वर्तमान समाज मे कुछ बेईमानो को पकड कर दण्ड देने में सरकार अपने कार्य की इतिश्री अवश्य समझ ले, पर ईसा की भाँति क्या उसका अन्त करण उसे यह नही कहेगा कि तू स्वय लोभी है, जीवन में अवसर मिले तो चोरी कर सकता है, तेरे को चोर पर पत्थर फैंकने का अधिकार नही है, पहले अपने को सुधार, जीवन-दृष्टि बदल।

महावीर और सामाजिक मूल्य

● डॉ० कमलचन्द सौगाणी

महावीर विश्व के महानतम युग प्रवर्तकों में से हैं। विश्व के इतिहास मे महावीर सर्वप्रथम महा-मानव हैं जिन्होने शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की गगा को प्रवाहित किया। उन्होने अपनी साधना के परिणामस्वरूप आध्यात्मिक अनुभव को प्राप्त कर आत्मानुभूति की। इस वैयक्तिक अनुभूति को वे अपने तक सीमित नही रखना चाहते थे वरन् मानव समाज को एक ऐसी दिशा देना चाहते थे जिससे स्वस्थ समाज के निर्माण होने के साथ साथ मानव आत्मानुभव के स्तर पर आरोहण कर जाय। महावीर का मतव्य यह प्रतीत होता है कि आत्मानु-भव के पश्चात् ही सामाजिक मूल्यो का सृजन किया जा सकता है। इसका प्रमाण यह है कि महावीर ने अपनी बारह वर्ष की ध्यान साधना के परिपूर्ण होने से पहले कभी अपना मुंह नही खोला। वे इस बात के दृढ समर्थक प्रतीत होते हैं कि आधारभूत सामाजिक मूल्यो का निर्माण आत्मानुभूति के पुट के बिना कार्यकारी नही होता। इसलिए यह कहना अनुचित है कि महावीर घर छोडकर चले गये, समाज छोडकर चले गये और एकान्त स्थान मे जाकर बैठ गये। वास्तव मे उनका सारा जीवन सामाजिक समस्याओ से पलायनवाद का न होकर उन समस्याओ के स्थायी और आधार भूत हल को ढूढ निकालने का सघर्ष था। वे जीवन के स्थूल सघर्षों मे अपने आप को फंसाना व्यर्थ समझते थे। वे तो संघर्षों की आत्मा को पकड़ना चाहते थे जिससे समाज मे उचित प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो सके। महावीर का प्रयास उस वैज्ञानिक की भाति था जो सामाजिक स्थूल द्वन्दो से हट कर अपनी प्रयोगशाला मे बैठकर उन बातों की खोज करता है जो समाज के जीवन को परिवर्तित कर सके। इसलिए महावीर वैज्ञानिक के सदृश एक अर्थ मे गहनतम सामाजिक थे। उन्होने अपने जीवन का अधिकाश भाग सामाजिक मूल्यो के निर्माण मे ही लगाया। इतिहास इसका साक्षी है। वे बैठे नहीं किन्तु चलते ही गये और अन्त तक चलते ही गये। ये था महावीर के जीवन मे 'स्व' और 'पर', 'मैं' और 'तू' का समन्वय। जो लोग महावीर को केवल आत्मानुभूति का पैगम्बर समझते हैं वे उनके साथ अन्याय करते है, और उनको छोटा बना [illegible] हैं। महावीर तो आत्मशुद्धि और समाज शुद्धि दोनो के जीते जागते उदाहरण हैं।

व्याप्त भेद को अस्वीकृत करने मे हैं। ऊच नीच हिंसा की पराकष्ठा है। प्रत्येक मनुष्य का अस्तित्व गौरवपूर्ण है। उसकी गरिमा को बनाये रखना अहिंसा का सुमधुर सगीत है। समाज मे प्रत्येक मनुष्य को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष धार्मिक स्वतत्रता है। अहिंसक समाज कभी भी वर्गशोषण का पक्षपाती नही हो सकता। महावीर ने दलित से दलित लोगो को सामाजिक सम्मान देकर उनमे आत्मसम्मान प्रज्वलित किया। वास्तव मे जब महावीर ने हरिकेशी चाण्डाल को अपने गले लगाया होगा तो अहिंसा अपने पूरे रूप मे आलोकित हुई होगी। पुरुष के समान स्त्री को जब महावीर ने प्रतिष्ठा दी होगी तो सारा समाज अहिंसा के आलोक से जगमगा उठा होगा। अहिंसा का यह उद्घोष आज भी हमारे लिये महत्वपूर्ण बना हुआ है। समाज मे अहिंसा के प्रयोग की परिपूर्णता उस समय हुई जिस समय महावीर ने धर्म चक्र के प्रवर्तन के लिए जनता की भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम स्वीकार किया। यह महावीर की जनतान्त्रिक दृष्टि का परिपाक था। महावीर जानते थे कि भाषा किसी भी व्यक्ति के लिए उतनी ही महत्वपूर्ण होती है जितना की उसका जीवन। भाषा का अपहरण जीवन का अपहरण है। इसलिए अहिंसा की मूर्ति महावीर जहाँ जाते वहाँ ऐसी भाषा का प्रयोग करते जो जनता की अपनी होती थी। महावीर अहिंसा के क्षेत्र मे मनुष्य तक ही नही रुके। इसलिए वे कह उठे कि प्राणी मात्र अन्तत एक है इसलिए किसी भी प्राणी को सताना, मारना, उसे उद्विग्न करना हिंसा की पराकष्ठा है।

महावीर इस बात को भलिभाति जानते थे कि आर्थिक असमानता और आवश्यक वस्तुओ का अनुचित सग्रह समाज के जीवन को अस्त व्यस्त करने वाला है। इनके कारण एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का शोषण करता है और उनको गुलाम बना कर रखता है। मनुष्य की इस लोभ वृत्ति के कारण समाज अनेको कष्टों का अनुभव करता है। इसलिए महावीर ने कहा आर्थिक असमानता को मिटाने का अचूक उपाय है अपरिग्रह। परिग्रह के साधन सामाजिक जीवन मे कटुता, घृणा और शोषण को जन्म देते हैं। अपने पास उतना ही रखना जितना आवश्यक है बाकी सब समाज को अर्पित कर देना अपरिग्रही पद्धति है। धन की सीमा, वस्तुओ की सीमा, ये सब स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए जरूरी है। धन हमारी सामाजिक व्यवस्था का आधार होता है और कुछ हाथो मे उसका एकत्रित हो जाना समाज के बहुत बडे भाग को विकसित होने से रोकना है। जीवनोपयोगी वस्तुओ का सग्रह समाज मे अभाव की स्थिति पैदा करता है। ऐसे परिग्रह के विरोध मे महावीर ने आवाज उठाई और अपरिग्रह के सामाजिक मूल्य की स्थापना की।

मानवीय व आर्थिक असमानता के साथ साथ वैचारिक मतभेद भी समाज मे द्वन्द को जन्म देते हैं। जिसके कारण समाज रचनात्मक प्रवृत्तियो को विकसित नही कर सकता। वैचारिक मतभेद मानव मन की सृजनात्मक मानसिक शक्तियो का परिणाम होता है पर इसको उचित रूप मे न समझने से मनुष्य मनुष्य के आपसी मतभेद सकुचित सघर्ष के कारण बन जाते हैं और इससे समाज शक्ति विघटित हो जाती है। समाज के इस पक्ष को महावीर ने गहराई से समझा और एक ऐसे सिद्धान्त की घोषणा की जिससे मत-भेद भी सत्य को देखने की दृष्टिया बन गई और व्यक्ति समझने लगा कि मतभेद दृष्टि—पक्षभेद के रूप मे ग्राह्य है। वह सोचने लगा कि मतभेद-सघर्ष का कारण नही किन्तु विकास का द्योतक है। वह एक उन्मुक्त मस्तिष्क की आवाज है। तथ्य को प्रकट करने के लिए महावीर ने कहा कि वस्तु एक पक्षीय न होकर अनेक पक्षीय है। इस सामाजिक मूल्य से विचारो का घर्षण ग्रहणीय बन गया। मनुष्य ने सोचना प्रारभ किया कि उसकी अपनी दृष्टि ही सर्वोपरी न होकर

दूसरे की दृष्टि भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। उसने अपने क्षुद्र ग्रह को गलाना सीखा। इस सामाजिक मूल्य ने सत्य के विभिन्न पक्षो को समन्वित करने का एक ऐसा मार्ग खोल दिया जिससे सत्य की खोज किसी एक मस्तिष्क की बपौती नही रह गई। प्रत्येक व्यक्ति सत्य के एक नये पक्ष की खोज कर समाज को गौरवान्वित कर सकता है। महावीर ने कहा कि परिसमाप्ति वस्तु के किसी एक पक्ष को जानने मे नही किन्तु उसके अनन्त पक्षो की खोज मे है। इस सामाजिक मूल्य ने वैचारिक अनुचित सघर्ष को समाप्त कर दिया और कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने के लिए आह्वान किया। अनेकान्त समाज का गत्यात्मक सिद्धान्त है जो जीवन मे वैचारिक गति को उत्पन्न करता है।

अत यह कहा जा सकता है कि महावीर का सारा जीवन आत्मसाधना के पश्चात सामाजिक मूल्यो के निर्माण मे ही व्यतीत हुआ। इसी कारण महावीर किसी एक देश, जाति व समाज के न होकर मानव जाति के गौरव के रूप मे प्रतिष्ठित हुए है।

※ आज हमें कुछ करना है ※

—ज्ञान सेठी

महावीर निर्वाण पर्व पर दृढ सकल्प यह करना है।
सयम तप और त्याग भाव से मानव रक्षा करना है।।
आज हमे कुछ करना है . . .(१)

भेद-भाव सब भुला करके, मातृभाव से रहना है।
"जीवो और जीने दो" को, मानव-चित्त मे धरना है।।
आज हमे कुछ करना है .... .. (२)

कलियुग के इस अंधकार मे, अपने को परखना है।
हिंसा, झूठ, प्रमाद, छोडकर, कर्मशील ही बनना है।।
आज हमे कुछ करना है . . . .(३)

परिग्रह का भाव त्याग कर, धर्म की रक्षा करना है।
"वीर प्रभु" के उपदेशो से, भविष्य उज्जवल करना है।।
आज हमे कुछ करना है.... (४)

महावीर : एक प्रतिवादी विश्व-शक्ति

० वीरेन्द्रकुमार जैन

ईसा पूर्व की छठवी सदी मे महावीर का उदय एक प्रतिवादी विश्व-शक्ति के रूप मे हुआ। जो जीवन-दर्शन उस जमाने मे वाद (थीसिस) के रूप मे उपलब्ध था, वह विकृत और मृत हो चुका था। प्रगतिमान जीवन को उससे सही दिशा नही मिल रही थी। पर सर्वत्र एक ही गत्यवरोध और अराजकता व्याप्त थी। तब उन छिन्न-भिन्न वाद के विरुद्ध एक प्रचण्ड प्रतिवाद (एण्टीथीसिस) के रूप मे महावीर आते दिखायी पडते हैं। उस समय के विसवादी हो गये जगत् का प्रतिवाद करके, उन्होने उससे एक नया सवाद (सिंथेसिस) प्रदान किया।

वेद के ऋषियो ने विश्व का एक सामग्रिक भावबोध पाया था। उनका विश्व-दर्शन एक महान् कविता के रूप मे हमारे सामने आता है। पर उस कविता मे भी वे विश्व के स्वयम्-प्रकाश केन्द्र सविता तक तो पहुँच ही गये थे। गायत्री मे उनका वही साक्षात्कार व्यक्त हुआ है, किन्तु यह दर्शन केवल भावात्मक था, प्रज्ञात्मक नही। इसी कारण इसकी परिणति भावातिरेक मे हुई। देह, प्राण, मन, इन्द्रियो के स्तर पर उतर कर यह भावातिरेक स्वयम्भू सविता के तेजस् केन्द्र से विच्युत और वियुक्त हो गया। अभिव्यक्ति अपने मूलस्रोत आत्म-शक्ति से बिछुड गयी। भावावेग मे सारा जोर अभिव्यक्ति पर ही आ गया। वृक्ष का मूल हाथ से निकल गया, केवल तूल पर ही निगाह अटक गयी। जड से कट कर झाड के कलेवर मे हरियाली कब तक रह सकती थी? सो वह मुर्झाने लगा, उसका ह्रास होने लगा। यही वेद वेदाभास हो गया। सविता के उद्गीथो का गायक ब्राह्मण पथ-च्युत और वेद-भ्रष्ट हो गया। फलत: कर्म-काण्डी ब्राह्मण-ग्र थो की रचना हुई।

तब उपनिषदो के ऋषि प्रतिवादी शक्ति के रूप मे उदित हुए। क्षत्रिय राजर्षियो ने प्रकट होकर अपने विजेता ज्ञान तेज और तपस् द्वारा सविता का नूतन साक्षात्कार किया। वेदो की महाभाव वाणी के केन्द्र मे उन्होने प्रज्ञान का स्वयम्-प्रकाश सूर्य उगाया, लेकिन उपनिषद् की ब्रह्मविद्या भी द्रष्टा-भाव से आगे न जा सकी। कालान्तर मे वह ज्ञान भी विकृत होकर स्वेच्छाचारियो के हाथो निष्क्रियता, पलायन और स्वार्थ का औजार बना। अवसर पाकर दबे हुए कर्मकाण्डी ब्राह्मणत्व ने फिर सिर उठाया; ब्रह्मविद्या पर फिर छद्म वेद-विद्या हावी हो गयी। उपनिषद् के ब्रह्मज्ञानियो से लगाकर श्रमण पार्श्व तक, भाव, दर्शन, ज्ञान को तपस् द्वारा जीवन के आचार-व्यवहार मे उतारने की जो एक महान् प्रक्रिया घटित हुई थी, वह कुण्ठित हो गयी थी। तब महावीर का उदय एक अनिर्वार विप्लवी शक्ति के रूप मे हुआ। दीर्घ और दारुण तपस्या द्वारा उन्होने दर्शन और ज्ञान को जीवन के प्रतिपल के आचरण की एक शुद्ध क्रिया के रूप मे परिणत

कर दिखाया। इसी से दर्शन के इतिहासकारों ने उन्हे क्रियावादी कहा है; क्योंकि उन्होने वस्तु और व्यक्तिमात्र के स्वतन्त्र परिणमन का मन्त्र-दर्शन जगत् को प्रदान किया था।" मनुष्य स्वयम् ही अपने भाग्य का विधाता है। कर्म करने न करने, उसके बधन मे बधने न बधने को वह स्वतन्त्र है। वह स्वय ही अपने आत्म का कर्ता और विधाता है। वह स्वयम् ही अपने सुख-दु ख, हर्ष-विषाद, जीवन-मृत्यु का निर्णायक और स्वामी है।

इससे प्रकट है कि आज का मनुष्य जिस आत्म-स्वातन्त्र्य को खोज रहा है, उसकी पस्थापना उपनिषद्-युग के ऋषि, श्रमण पार्श्व और महाश्रमण महावीर कर चुके थे। इस तरह मूलत' आधुनिक युग-चेतना का सूत्रपात ईसापूर्व की छठवी सदी मे ही हो चुका था। विचार और आचार की एकता ही इस चेतना का मूलाधार था। महावीर के ठीक अनुसरण मे ही बुद्ध आये। उनके व्यक्तित्व मे मैं महावीर का ही एक प्रस्तार (प्रोजेक्शन) देख पाता हूँ। वे दोनो उस युग की एक ही क्रिया-शक्ति के दो परस्पर पूरक और अनिवार्य आयाम थे। महावीर को परात्पर परब्राह्मी सत्ता के पूर्ण साक्षात्कार के बिना चैन न पडा। बुद्ध जगत् के तात्कालिक दु ख से इतने विगलित हुए, कि दु ख के मूल की खोज तक जाकर, स्वयम् दु ख-मुक्त होकर, सर्व के दुःख-मोचन के लिए ससार के समक्ष एक महाकारुणिक परित्राता के रूप मे अवतरित हो गये। आत्म-तत्व और विश्व-तत्व, तथा उनके बीच के मौलिक सम्बन्ध के साक्षात्कार तक जाना उन्हे अनिवार्य न लगा। पूर्ण आत्म-दर्शन नही, आत्म-विलोचन ही उनके निर्वाण का लक्ष्य हो गया। सो 'अव्याकृत' और 'प्रतीत्य समुत्पाद' का कथन करके उन्होने विश्वप्रपच से उत्पन्न होने वाले सारे प्रश्नो और समस्याओ को गौण कर दिया। मगर महावीर तत्व तक पहुँचे बिना न रह सके। सो वे तत्त्व के स्वभाव को ही अस्तित्व मे उतार लाने को बेचैन हुए थे। ताकि जीवन की समस्याओ का जो समाधान इस तरह आये, वह केवल तात्कालिक निपट बाह्याचार का कायल न हो, वह स्वयभू सत्य का सार्वभौमिक और सार्वकालिक प्रकाश हो। वह केवल भाविक और कारुणिक न हो : वह तात्त्विक, स्वाभाविक और स्वायत्त भी हो स्वयम् तत्व ही भाव बन कर जीवन के आचार मे उतरे। उनका प्राप्तव्य चरम-परम सत्ता-स्वरूप था, इसी कारण उन्होने इतिहास मे अप्रतिम, ऐसी दीर्घ और दुर्दान्त तपस्या की। वस्तु-मात्र और प्राणि-मात्र के साथ वे स्वगत और तद्गत हो गये। सर्वज्ञ अर्हत् महावीर मे स्वयम् विश्व-तत्त्व मूर्तिमान होकर इस पृथ्वी पर चला।

ईसापूर्व की छठवीं सदी मे, समूचा जगत् अन्तिम सत्य को जान लेने की इस बेचैनी से उद्विग्न दिखायी पडता है। सारे लोकाकाश मे एक महान् अतिक्रान्ति की लहरे हिलोरे लेती दीखती है। उस काल के सभी द्रष्टा और ज्ञानी विचार को आचार बना देने के लिए, धर्म को कर्म और तत्व को अस्तित्व मे परिणत कर देने को जूझते दिखायी पडते है। इसी से सक्रिय ज्ञान (डायनामिक नॉलेज) के धुरन्धर व्यक्तित्व, उस काल के भूमण्डल के हर देश मे पैदा हुए। महाचीन मे लाओत्स, मेन्शियस और कन्फ्यूसियस, यूनान मे हिराक्लिटस और पायथागॉरस, फिलिस्तीन मे येर्मियाह और इझेकिएल तथा पारस्य देश मे जर्थुस्त्र और भारत मे महावीर और बुद्ध एक साथ, आत्म-धर्म को सीधे आचार मे उतारने की महाक्रियात्मिक मत्रवाणी उच्चरित कर रहे थे। वस्तुतः वह एक सार्वभौमिक क्रियावादी अतिक्रान्ति का युग था।

—वीर निर्वाण विचार-सेवा, इन्दौर के सौजन्य से

महावीर के प्रति

—लक्ष्मीचन्द्र जैन 'सरोज' एम. ए.

सन्मति, तुझमे सब गुण सचित, अग-जग भू-नभ मे सत्य प्रबल ।
तवपद-चिन्हो पर चल किंचित, पुज जाते युग मे मनुज सकल ।।

तू अमित त्याग कर आख बन्द, इतनी दूरी हँस लाघ गया ।
जिस पर चल शतयुग से मानव, थककर कहता बस हाक गया ।।

सत्य–अहिंसा–अपरिग्रह के, दोलो मे झूला जग झाका ।
शिशु सा स्वाभाविक निर्विकार, ऐश्वर्य त्याग सब कुछ आका ।।

तेरी द्रुत गति जड़ प्रस्तर मे, भर देती अभिनव जीवन स्तर ।
शाप बदलकर बनते वर, तू प्रलय काल तक अजर अमर ।।

अगणित तारो मे पूर्णचन्द्र, अगणित दीपो मे विमल सूर्य ।
अगणित नादो मे रहितरन्ध्र, अगणित वाद्यो मे सबल तूर्य ।।

तू अमित त्याग का चिर प्रतीक, तू सत्य क्रान्ति का वर प्रतीक ।
तू सथ्य शान्ति का सर प्रतीक, तू लक्ष्य क्रान्ति का वर प्रतीक ।।

तेरे इगित पर चलने को, जग उत्सक कहता तू अनूप ।
तेरी मधुवाणी सुनने को, उत्सुक आत्मा समझे स्वरूप ।।

अहिंसा के अवतार भगवान महावीर

० डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

भगवान महावीर जैन धर्म के २४वें तीर्थंकर थे। उन्होने किसी नये धर्म की स्थापना नही की थी किन्तु अपने पूर्ववर्ती २३ तीर्थंकरो द्वारा प्रतिपादित धर्म का ही पुन प्रचार किया और उसे नवजीवन प्रदान किया। महावीर के पूर्व होने वाले २३ तीर्थंकरो मे ऋषभदेव प्रथम, नेमिनाथ २२वें तथा पार्श्वनाथ २३वें तीर्थंकर थे। जैनाचार्यों द्वारा इन सभी तीर्थंकरो के जीवन एव उपदेशो के सम्बन्ध मे लिखा हुआ विशाल साहित्य मिलता है जो देश की सभी भाषाओ मे उपलब्ध होता है।

महाश्रमण महावीर ने बिहार प्रदेश के कुण्डल ग्राम मे जन्म लेकर देश के असख्य नर-नारियो को सत्वेषु मैत्री का पाठ पढाया। वे तीर्थंकर थे लेकिन उन्हे यह तीर्थंकरत्व ऐसे ही नही मिल गया था, वह कितने ही पूर्व भवो मे की गई विविध प्रकार की तपस्या एव साधना के आधार पर मिला था। इसी प्रकार निर्वाण प्राप्त करने मे भी उन्हे कितने ही उपसर्गों का सामना करना पडा था लेकिन वे उनके सामने झुके नही और अपने निश्चित मार्ग पर आगे बढते ही गये और तब तक विश्राम नही किया जब तक उन्हे पहिले कैवल्य और फिर निर्वाण प्राप्त नही हो गया।

महावीर का जन्म ईसा के ५६६ वर्ष पूर्व हुआ था। उनके पिता महाराजा सिद्धार्थ थे जो वैशाली के समीप ही स्थित कुण्डल ग्राम के शासक थे। इसलिये महावीर को कभी-कभी वैशालीय भी कहा जाता है। उनकी माता का नाम त्रिशला था जो वैशाली गणराज्य के अधिपति महाराजा चेटक की पुत्री थी और ऊँची-विचारो की महिला थी। महावीर का जन्म चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन हुआ जिस दिन आज भी सारे देश मे विशाल रूप से महावीर जयन्ती मनायी जाती है तथा राजस्थान के सर्वाधिक लोकप्रिय अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी मे एक विशाल मेला भरता है जिसमे सभी जाति एव सभी धर्मों के लाखो नर-नारी भगवान महावीर के चरणो मे अपनी सादर श्रद्धाञ्जली समर्पित करते हैं। महावीर के जन्म लेते ही देश के कौने कौने मे महाराजा सिद्धार्थ को बधाईयाँ एव शुभ सदेश प्राप्त हुए। कुण्डलपुर मे देशवासियो ने ही नही किन्तु स्वर्ग मे देवो एव इन्द्रो ने भी आकर विविध उत्सव आयोजित किये। बालक का नाम वर्द्धमान रखा गया। बचपन मे इन्हे अत्यधिक लाड-प्यार मे पाला गया। तीर्थंकर को कौन गोद मे लेना नही चाहेगा। स्वर्ग के देवियो एव नगर की कुल वधुए बालक वर्द्धमान को लाड-प्यार करने मे एक दूसरे की होड करती। महावीर दोज के चन्द्रमा के समान बढने लगे। शिशु से बालक हुए और लगे खेलने अपने ही साथियो मे।

वर्द्धमान बचपन मे ही निर्भयी थे। एक बा,

जब वे अपने ही साथियो के साथ उद्यान मे खेल रहे थे और कभी पेड पर चढते और कभी उतरते तो एक भयकर सर्प भी उनके साथ आकर खेलने लगा। लेकिन जैसे ही महावीर के साथियो को सर्प दिखाई दिया वे चीत्कार करके भाग खडे हुए। लेकिन महावीर किंचित भी नही डरे और उसकी पूछ पकड कर उसे एक ओर फेंक दिया। कहते हैं वह सर्प सगमक देव था और महावीर के निडरपने की ही परीक्षा लेने आया था। इस घटना के पश्चात उन्हें महावीर कहा जाने लगा।

महावीर बचपन मे ही चिन्तनशील रहते थे। वे कभी कभी अपने महल मे मानवता को कराहती हुई देखते। ऊँच-नीच के भेदभाव, भूख, प्यास एव भय से आतकित मानव के भावो को वे सहज ही मे पढ लेते और फिर घण्टो उन्ही प्रश्नो पर विचार किया करते। जगत की उदारता, ममता, मोह एवं जीवन की क्षणभगुरता पर विचार करने के लिये ध्यानस्थ हो जाते। यह देखकर माता पिता घबरा उठते और उनके समक्ष अधिक सुख सामग्री उपस्थित कर देते। कुटुम्बीजन, नागरिक, सेविकाए इन्हे घेरे रहती तथा वे सभी उनके मन को बटाने का प्रयत्न करते लेकिन महावीर को पूरी तरह अपनी ओर आकृष्ट करने मे वे अपने आपको असमर्थ पाते। महावीर वर्द्धमान जब पूर्ण युवा हुए तो उनका सौन्दर्य देखते ही बनता, उनका अनुपम सौन्दर्य नगर मे चर्चा का विषय बन गया। अनेक राजकुमारियाँ मन ही मन मे राजकुमार महावीर की सुन्दरता की प्रशसा करती। जब कभी वे राज-मार्ग मे होकर निकलते तो मार्ग मे उनके दर्शनो के लिये भीड लग जाती और उन जैसा राजकुमार को पाकर नागरिक अपने भाग्य की सराहना करने लगते। उनके पास अपार सम्पत्ति थी। लेकिन वे इससे महान नही कहलाना चाहते थे। क्योकि सम्पत्ति, वैभव एव अधिकार ही महानता का सूचक होते तो न जाने इस जगत मे कितने सम्राट, राजा, महाराजा हो गये और वे आज काल के मुख मे इस तरह से चले गये जैसे कभी हुए ही नही थे। उनके विवाह का प्रस्ताव आया। माता पिता ने पुत्र वधू का मुख देखना चाहा। माता ने कलिंग देश के महाराजा जितशत्रु की पुत्री यशोदा को पुत्र के लिये पसन्द भी कर लिया लेकिन महावीर ने विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। विवाह के लिये अनेक प्रयास किये गये। राज्य की दुहाई दी गई। वश परम्परा समाप्त होने का भय दिखाया गया लेकिन महावीर ने किसी की बात नही सुनी और अन्त मे तीस वर्ष की अवस्था मे मगसिर बुदी १० के शुभ दिन गृह त्याग दिया।

राजकुमार महावीर पूर्ण निर्ग्रन्थ हो गये। दिशायें उनका परिधान बन गई। राजमहलो के स्थान पर सुनसान जगलो, गुफाओ एव पर्वत शिलाओ ने ले लिया। षट्रस व्यजन के स्थान पर दिन में एक बार आहार लेना और वह भी खडे-खडे ही लेना प्रारम्भ कर दिया। कुछ गिनती के ग्रास लेना उनकी साधना का अ ग बन गया। फिर भी वे अनेक बार निराहार रहे। कितनी ही बार सप्ताह एव मास बीत जाते और वे आहार के लिये गमन ही नहीं करते। उनकी साधना एक-दम कठोर थी। १२ वर्ष की लम्बी अवधि मे वे उग्र तपस्या मे लीन रहे और भयकर सर्दी, गर्मी एव वर्षा उन्हे जरा भी विचलित नही कर सकी। उनकी कठोर तप साधना को देखकर बडे-बडे ऋषि महर्षि भी लज्जित हो जाते और मन ही मन उन्हे अपना गुरु मान लेते। वे अस्नान व्रत पालते थे। भूमि पर शयन करते थे। एकान्तवास उन्हे प्रिय था। वर्षाकाल को छोडकर वे सदा एक स्थान पर अधिक समय तक नही ठहरते। वे मौन ही विचरण करते।

एक रात्रि को वे उज्जयिनी के मुक्तक श्मशान

मे ध्यानस्थ थे। वही पर रहने वाले एक रुद्र ने ध्यानरूप देखकर उन पर अनेक उपसर्ग किये। उन्हें डराना चाहा। ध्यान से विचलित करने के लिये अनेक कुत्सित उपाय अपनाये गये। सिंह गर्जना एव हाथी की चिंघाड की गई। सर्प एवं विषैले जानवरो से डराया गया लेकिन महावीर तो महावीर ही थे। वे सुमेरु के समान अडोल एव अकम्पन बने रहे। अन्त मे क्षुद्र ने उनके चरणो मे गिरकर अपने कुकृत्यो के लिये क्षमा मागी। महावीर ने जब देखा तो ऐसा लगा जैसे कुछ हुआ ही न हो। उन्होने रुद्र को कुछ भी नही कहा। ऐसी कितनी ही घटनायें महावीर के जीवन मे घटी लेकिन उनकी कभी चिन्ता नही की और अपने उद्देश्य मे आगे बढते ही गये।

बारह वर्ष की तपस्या के पश्चात वैशाख शुक्ला दशमी के शुभ दिन महावीर को कैवल्य हो गया। वे सर्वज्ञ बन गये। तीन काल एव तीनो लोक की घटनायें उनके ज्ञान मे प्रत्यक्ष झलकने लगी। उन्होने आत्मतत्व को जान लिया तथा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य एव अनन्त सुख रूप अनन्त चतुष्टय को प्राप्त कर लिया। कैवल्य के पश्चात महावीर जीवन भर निराहार ही रहे। उनका शरीर सातिशय हो गया और भूख प्यास आदि सभी प्रकार की शारीरिक बाधायें समाप्त हो गई।

राजगृह के बाहर विपुलाचल पर्वत पर श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन उनकी प्रथम देशना हुई। उनकी सभा को समवसरण कहा जाता है जिसका निर्माण तीर्थंकर केवलज्ञानी के लिये किया जाता है। इसमे बारह सभाए होती हैं। इसमे एक सभा मे बिना किसी जातिगत भेदभाव के श्रमण, ऋषिगण, स्वर्गवासीदेव, श्रमण, अन्तरदेविया, भवनवासी देविया, भवनवासी देव, अन्तरदेव, स्वर्गवासी देव, मनुष्य और तिर्यंच (पशु-पक्षी) बैठकर धर्मोपदेश सुनते हैं। समवशरण के सुखद वातावरण मे उनकी प्रथम देशना हुई। गौतम को उनका प्रथम शिष्य बनने का गौरव प्राप्त हुआ। महावीर ने अर्धमागधी भाषा मे अपना उपदेश दिया। यह प्रथम अवसर था जब किसी धर्माचार्य ने जन भाषा मे धार्मिक प्रवचन दिया था। इसलिये हजारो की सख्या मे उनकी धर्म सभा मे नर-नारी आने लगे।

भगवान महावीर ने अपने प्रवचनो मे सर्व प्रथम हिंसा के विरुद्ध जन–क्रान्ति की। नरबलि एव पशुबलि को घोर पाप बतलाया तथा सब जीवो से मैत्री भाव रखने का निरन्तर उपदेश दिया। उन्होने जातिवाद के विरुद्ध आवाज उठाई और धर्म को किसी की बपौती बनाने का विरोध किया। महावीर प्रथम धर्माचार्य थे जिन्होने प्राणी मात्र को गले लगाया और धार्मिक सहिष्णुता अपनाने पर जोर दिया है।

महावीर वर्द्धमान अहिंसा के अवतार थे। उन्होने अहिंसा को ही विश्व का एक मात्र मत्र घोषित किया और तीस वर्ष तक देश के कोने-कोने मे विहार करके अहिंसा धर्म को विश्व धर्म के रूप मे प्रस्तुत किया। महावीर ने अहिंसा की पुन प्राण प्रतिष्ठा की थी और सर्वोदय मार्ग का निर्माण किया था। जीवो और जीने दो का सन्देश घर-घर मे पहुचाया।

उन्होने कहा कि अहिंसा विश्व शान्ति का आधार है। अहिंसा प्रेम का स्रोत है, जिसके अमृत द्वारा जगत के प्राणियो को जीवन दान दिया जा सकता है। उन्होने अहिंसा को जगत कल्याण की कसौटी बतलाया।

भगवान महावीर ने अहिंसा धर्म का प्रतिपादन करते हुए बतलाया कि—

सब प्राणियो को अपनी जिन्दगी प्यारी है
सुख सबको अच्छा लगता है और दुख बुरा

वध सबको अप्रिय है और जीवन प्रिय
सब प्राणी जीना चाहते हैं
कुछ भी हो सब को जीवन प्रिय है
अत किसी भी प्राणी की हिंसा न करो ।[1]

भगवान महावीर ने जगत को समझाया कि किसी भी प्राणी, किसी भी भूत, किसी भी जीव और किसी भी सत्व को न मारना चाहिये न उन पर अनुचित शासन करना चाहिये, न उनको गुलामो की तरह पराधीन बनाना चाहिये, न उन्हे परिताप देना चाहिये और न उनके प्रति किसी प्रकार का उपद्रव करना चाहिये । अहिंसा वस्तुत पवित्र सिद्धान्त है ।[2]

वास्तव मे अहिंसा के समान दूसरा धर्म नही है और हिंसा वस्तुतः ग्रन्थबन्धन है, यही मोह है यही मार मृत्यु है और यही नरक है ।

"धम्ममहिंसा सम नत्थि
एस खलु गथे, एस खलु मोहे
एस खलु मारे, एस खलु णरए ।"

यही नही सब जीव जीना चाहते हैं कोई भी मरना नही चाहता ।

'सव्वे जीवा वि इच्छति जाविउ न मरिज्जिउ'

अहिंसा ही मुक्ति को प्रदान करती है तथा अहिंसा ही स्वर्ग लक्ष्मी को प्रदान करने वाला है । अहिंसा ही आत्मा का हित करती है और समस्त कष्ट एव विपत्तियो को नष्ट करती है । जिस प्रकार इस लोक मे परमाणु से कोई छोटा एव आकाश से बडा द्रव्य नही है इसी प्रकार अहिंसा धर्म से कोई बडा धर्म नही है । अहिंसा तो उत्कृष्ट धर्म है तथा हिंसा सब जगह निन्दनीय है ।[3]

"अहिंसा परमो धर्म हिंसा सर्वत्र गर्हिता ।"

अहिंसा ही जगन्माता है । अहिंसा ही आनन्द की सन्तति है । अहिंसा ही उत्तम गति एव शाश्वत लक्ष्मी है । जगत मे जितने उत्तमोत्तम गुण हैं वे सब अहिंसा मे विद्यमान हैं । समस्त धर्मों के समस्त शास्त्रो मे यही सुना जाता है कि अहिंसा लक्षण तो धर्म है और प्रतिपक्षी हिंसा करना ही पाप है ।[4]

---

1 सव्वे पाणा पिआउया
सुहसाया दुक्खपडिकूला
अप्पियवहा पियजीणो
जीविउ कामा
सर्वेसि जीविय पिय
नाइवाएज्ज कचण

—आचारांग सूत्र

2. सव्वे पाणा, सव्वे भूया
सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता
न हतव्वा, न अज्जावेयव्वा
न परिघेतत्वा, न परियावेयव्वा
न उद्वेयव्वा
इत्थ विजाणह नत्यित्थ दोसो
आरियवणमेय

—आचारांग सूत्र

3 अहिंसेव शिव सुते दत्ते च त्रिदिवश्रिय ।
अहिंसेव हित कुर्यात, व्यसनानि निरस्यति ।।३३।।

परमाणो पर नात्प न महद् गगनात्परम ।
यथा किंचितथा धर्मा नाहिंसा लक्षणात्परम् ।।४१।।

—ज्ञानार्णव—आ० शुभचन्द

4 अहिंसेव जगन्माता हिंसेवानन्द पद्धति
अहिंसेव गति साध्वी श्रीरहिंसेव शास्वती ।।३२।।

श्रूयते सर्वशास्त्रेषु सर्वेषु समयेषु च ।
अहिंसा लक्षणो धर्म तद्विपक्षश्च पातकम ।।३६।।

—ज्ञानार्णव—आ० शुभचन्द

भगवान महावीर के २५००वें परिनिर्वाण वर्ष मे आज अहिंसा के प्रतिपादन की सबसे अधिक आवश्यकता है। एक ओर मानव चन्द्रमा पर उतर चुका है तो दूसरी ओर वह नर-सहार की तैयारी भी कर रहा है। देश मे आज जितनी हिंसा हो रही है इतनी पहले कभी नही होती थी। बूचडखाने क्रूर रहे है, मत्स्य पालन करके हजारो टन मछलियाँ मानव का भोजन बन रही है, जँगली पशुओ को एक-एक करके निशाना बनाया जा रहा है और आज यह स्थिति है कि जगल है लेकिन उनमे जगली जानवर नही है, केवल पेड पौधे खडे हैं। ऐसा लगता है कि हमारी हिंसा करने के प्रति झिझक समाप्त होती जा रही है और हम निर्दयी एव क्रूर इसान बन रहे है। न हमारी वाणी मे अहिंसा है न मन मे अहिंसा है और न शरीर से अहिंसा का पालन हो रहा है। मनुष्य को इतना जल्दी क्रोध आने लगा है कि वह स्व-पर का हित ही भूल जाता है और वह क्रोध मे आकर न जाने क्या कर बैठता है। मानव हत्या जैसे घृणित कार्य उसके लिये सरल बन गये है और आज आये दिन समाचार पत्रो मे हत्याओ के समाचार पढ़ने को मिलते है। पिता-पुत्र की, भाई भाई की, गुरु-शिष्य की हत्याये आये दिन होती रहती हैं। अब तो मनुष्य का कोमल हृदय भी वज्र का बनता जा रहा है जिस पर ऐसी घटनाओ का कोई प्रभाव ही नही पडता। इसलिये वर्तमान युग मे अहिंसा के प्रचार की सर्वाधिक आवश्यकता है। जब तक मानव हृदय मे करुणा के भाव नही होगे, दया उत्पन्न नही होगी, पर दुख कातर नही बनेगा तब तक अहिंसा की प्रशसा करते रहने पर भी वह अहिंसक नहीं बन सकेगा। क्योकि अहिंसा की प्रतिष्ठा मे तो सब प्राणी निर्वैर हो जाते हैं। वे अपने वैर विरोध छोड देते हैं इसलिये अहिंसा ही विश्व शान्ति की कुंजी है, समाजवाद एव विश्व बन्धुत्व की एक मात्र आधार शिला है। मानव विकास के बीज उसी मे नीहित है। अहिंसा ही उसका परम धर्म और इसी मे परब्रह्म के दर्शन किये जा सकते है। इसलिये आइये अहिंसा के अवतार भगवान महावीर की २५००वी निर्वाण शताब्दि के पावन अवसर पर हम स्वय अपने जीवन मे अहिंसा को उतारे और विश्व के सभी मानव अहिंसा के महत्व को समझकर उसको अपने जीवन मे उतारने का प्रयास करें। यही युग की सबसे बडी माग है, देश के सर्वतोमुखी विकास की निशानी है।

स्वस्थ परम्पराएं परिवार, समाज
तथा देश को प्रगति की ओर
ले जाती हैं और विवाह में
दहेज की परम्परा किसी भी
प्रकार से स्वस्थ नहीं है।

महावीर निर्वाणोत्सव को मिलकर सफल बनायें

—अजीत निगोतिया

उत्तम शुभ सयोगो से ऐसा अवसर पाया है,
यही हमारी क्षमता का उत्तर लेने आया है।
जिसने तथ्य न यह समझा है, पीछे पछताया है ।।
ऐसा न हो कही हम फिर ठोकर पर ठोकर खायें।
महावीर निर्वाणोत्सव को मिलकर सफल बनायेगें ।।

इसमे सक्रिय जागरूकता बहुत काम आयेगी,
थोडे ही श्रम से समाज की दिशा बदल जायेगी।
यही वह कसौटी है, जो मजिल पर पहुँचायेगी ।।
चन्द्रगुप्त के वशज हैं हम सिद्ध सहित दिखलायेंगे ।
महावीर निर्वाणोत्सव को, मिलकर सफल बनायेंगे ।।

भारत भर मे जैनो का, सर्वत्र जाल छाया है,
ये जो चाहे सो कर ले, इतना यश का सरमाया है।
कथनी कम, केवल करनी का अब अवसर आया है ।।
अपने नैसर्गिक यश को सार्थक करके दरशायेंगे।
महावीर निर्वाणोत्सव को मिलकर सफल बनायेंगे ।।

यदि हम सब सगठित रहे तो, पर्वत ढा सकते हैं,
यदि चाहे तो चमत्कार, जगत को दिखला सकते हैं।
यदि चाहे तो युगो का मूल्य चुका सकते हैं ।।
सहमी सिहरी रहती है कर्मठता से बधाये रहते हैं ।
महावीर निर्वाणोत्सव को मिलाकर सफल बनायेंगे ।।

भूत, भविष्यत, वर्तमान की यह सेवा उद्गम है,
जिसमे सफलताओ का सारभूत उपक्रम है ।
भरा जैन सम्राटो की कृति से अपना अलबम है ।।
इस दुर्लभ अवसर से अपना ध्वज जग मे फहरायेंगे।
महावीर निर्वाणोत्सव को मिलकर सफल बनायेंगें ।।

पूर्वज की गौरव गाथायें, कर्मठ दुहराते हैं,
अपने दृढ संकल्पो से दुनिया पर छा जाते है ।
जो भी लक्ष्य बनाया है, मजिल तक पहुंचाते है ।।
चार चाद पुर्वज की कृतियो पर हम और लगाये हैं ।
महावीर निर्वाणोत्सव को मिलकर सफल बनायेंगे ।।

रही इस दिगम्बर समाज की धार्मिक परम्परा है,
लेकिन अब अपना स्वरूप दिखता बिखरा रहे हैं ।
इसलिये अबतलक वास्तविक शौर्य नही निखरा है ।।
ऐसे उत्सव-उपवन को श्रम पुष्पो से महकायें रहते हैं ।
महावीर निर्वाणोत्सव को मिलकर सफल बनायेंगे ।।

निर्वाणोत्सव की खराद पर रूप न यदि निखरेगा,
तो यह मुल्यवान हीरा फिर कौडी मोल बिकेगा ।
फल यह होगा निरूत्साह होकर ढाचा बिखरेगा ।।
यह रहस्य हृदयगंम कर अपना कर्त्तव्य निभायेंगे ।
महावीर निर्वाणोत्सव को मिलकर सफल बनायेंगे ।।

आओ हम सब एक रूप बलशाली कदम उठायें,
जितना भी सम्भव हो इसमे अपना योग लगायें ।
इस प्रकार निर्वाणोत्सव घर-घर मे अलख जगायेंगे ।।
तन-मन-धन से वीर प्रभु को श्रद्धा सुमन चढायेंगे ।
महावीर निर्वाणोत्सव को मिलकर सफल बनायेंगे ।।

भगवान महावीर और युवा-वर्ग

० सत्यंधर कुमार सेठी

भगवान महावीर का २५००वां निर्वाण महोत्सव एक ऐसे विकट समय मे मनाया जा रहा है जबकि भारत वर्ष के कौने-कौने मे भुखमरी महगाई और अकाल को लेकर त्राहि-त्राहि मची हुई है। कही भी शांति की छोटी सी रेखा भी दिखाई नही पडती। हर व्यक्ति लूट खसोट और अत्याचार पर पग बढा रहा है। आस्ते-आस्ते अनैतिकता के साथ मानवता गायब हो रही है। यदि यही स्थिति रही तो राष्ट्र विनाश के कगारे पर पहुंच जायगा और स्थिति भयावह बन जायेगी।

परिस्थितियो का निर्माण मानव स्वय करता है। जब उसकी आकाक्षायें बढ जाती है और शोषण ही उसका जीवन बन जाता है तब राष्ट्र मे ऐसी परिस्थितियो का निर्माण होता है। आज हर आदमी शोषक बन रहा है। जमाखोरी व मुनाफा खोरी और रिश्वत खोरी की कोई सीमा नही है। न देश मे अनाज की कमी है और न अन्य चीजो की। बल्कि उत्पादन पहले से ज्यादा हो रहा है, लेकिन पहले की अपेक्षा आदमी की आकाक्षायें और वासनायें इतनी बढ गई हैं कि आज वह पूर्ण दु खी हो रहा है। इन परिस्थितियो मे राष्ट्र को अगर बल दे सकते हैं तो महावीर के मानवतावादी सिद्धांत ही दे सकते हैं।

ये परिस्थितियां पहले भी थी, वे अन्य रूप मे हो सकती हैं लेकिन समस्याओ के हल करने मे सिद्धातो का बदला नही आता है। भगवान महावीर के उदय काल मे भी राष्ट्र की स्थिति वीभत्स थी और उसको सवारने के लिए कोई भी आगे बढने को तैयार नही था। परिस्थितिया दिनोदिन बढती जा रही थी। मानव ग्रसित होता जा रहा था। बडे-बडे राजघरानो की लडकियो का अपहरण होता था और वे खुले आम चौराहो पर बेची जाती थी। इन परिस्थितियो ने महावीर को बेचैन कर डाला था। उस समय सारे राष्ट्र के लोग एक तरफ थे और महामानव महावीर का चिंतन एक तरफ था। महावीर समझते थे कि समस्यायें विकट है, फिर भी मुझे इनके सामने झुकना नही है। मुझे आगे बढना है।

महापुरुषों का लक्ष्य लोक कल्याण का होता है। यहा स्व स्वार्थ का बलिदान करना होता है। महा मानव भगवान महावीर एक सबल दृढ निश्चयी युवक थे। उनका निर्णय अटल था, वे लोक कल्याण के लिए आगे बढे, घर से निकले। उन्होंने ऐश्वर्य को तो ठुकराया ही लेकिन अपने शरीर और स्वास्थ्य को भी ठुकराकर अपने को लोक सेवा मे लगा दिया।

महावीर एक महान क्रांतिकारी युवक थे, उन्होने एकात मे बैठकर सोचा कि इन समस्त समस्याओ का ऐसा मार्ग निकले जिससे मानव शान्ति

की श्वांस ले और वह सही मार्ग पर आ जाय। इसके लिए उन्होने अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त विचारधारा को जन्म दिया और उसके प्रचार और प्रसार के लिए जीवन अर्पण कर दिया। अहिंसा से विश्व प्रेम की भावनायें बढी, प्रेम वात्सल्य भाईचारा और सह-अस्तित्व ही भावनायें जागृत हुई जिससे वढती हुई अमानवीय भावनाओ के बढते हुए कदम रुके। मानव ने सोचा कि महावीर क्या कहते हैं। महावीर के इस सिद्धात ने सबके हृदय को वदल डाला और उनमे परिवर्तन आगया, अपरिग्रह के सिद्धांत से शोषण की भावनायें खत्म हो गई और अनेकान्त से आग्रही धार्मिक रूढिये खत्म हो गई। हर प्राणि ने शाति की श्वास ली। भगवान महावीर के इस त्याग ने उनको महामानव भगवान बना डाला।

आज भी ये तीनो सिद्धात राष्ट्र को वल दे सकते हैं। क्योकि देश मे प्रेम और भाई चारे के न होने से ही आज इतने अत्याचार बढ रहे हैं। अगर इन अत्याचारो का प्रतिरोध करना है तो इन्ही सिद्धातो को अस्त्र बनाकर जैन समाज के युवको को आगे वढ जाना चाहिए। महावीर तो एक थे, आज आप असख्य है। युवक चाहें तो परस्थितिया बदल सकते है। आज के युवक की शक्ति निर्माण मे नही है। वह महगाई के नाम पर लूट-खसोट मारपीट तो करता हैं लेकिन सही हल नही निकालना चाहता। जैन समाज के नवयुवको पर एक बहुत वडी जिम्मेदारी इस वक्त है। वह चाहे तो अपनी जिम्मेदारी को महसूस करके त्याग और वलिदान के वल पर वर्तमान समस्याओ का हल भगवान महावीर के सिद्धातो से कर सकते हैं। महावीर के सिद्धात प्राणवान हैं। उनमे क्राति है। वे परिवर्तन चाहते है। लेकिन आवश्यकता है आगे वढने की। हम २५०० वा निर्वाण महोत्सव तो मनावेंगे ही लेकिन वह जयकारो का और जुलूसो का न हो, सही महोत्सव यह हो कि इन सिद्धातो को लेकर हम देश को नया जीवन दे सकें। पहले हम जैन समाज से इन शोषण की भावनाओ को खत्म करें और इसके वाद प्रवल सगठन के साथ आगे वढ जाय। भगवान महावीर के कुछ ऐसे भी सिद्धात है जिनसे राष्ट्र को वहुत वल मिल सकता है। जैसे अष्टमी, ग्यारस, चौदस, दूज और पचमी को उपवास रखे जाय और सात दिन मे तेल मीठा आदि रसो का त्याग क्रमशः किया जाय। प्राचीन भारत मे पर्वों के नाम पर मानव इन पवित्र दिनो मे उपवास करके राष्ट्र के लिए अनाज और घी तेल की वचत किया करते थे। आज अगर युवक आगे वढें और इन सिद्धातो व विचारो का प्रचार करें और पचपन करोड आदमी सप्ताह में एक बार भोजन व रस न खाय तो राष्ट्र की कितनी वचत हो सकती है। यह वहुत वडा हल है। क्या समाज के नेता व युवक इसके संबंध मे विचार करके वर्तमान स्थिति मे राष्ट्र की रक्षा के लिए कदम वढाकर सही रूप मे निर्वाण महोत्सव को जीवित करेगे।

दहेज न लेकर,
न देकर
आर्थिक विषमताओं से
निपटा जा सकता है।

मोह ममत्व त्याग कर तुमने
मानवता की अलख जगाई

—अनूपचन्द न्यायतीर्थ 'साहित्यरत्न'

महावीर ओ ! त्रिशला नन्दन,
वर्द्धमान सिद्धारथ प्यारे ।
कुण्डलपुर गण राज्य मनोहर,
वैशाली के राज दुलारे ।।
नद्यावर्त्त प्रासाद छोड क्यो बन के पथ पर डगर वढाई ।
मोह ममत्व त्याग कर तुमने मानवता की अलख जगाई ।।१।।

मातपिता परिवार जनो का,
स्नेह अपरिमित मन ना भाया ।
अतुल सपदा वैभव तुम को,
शासन तत्र रोक ना पाया ।।
सब से नाता तोड चले क्यो उदासीनता मन मे आयी ।
मोह ममत्व त्याग कर तुमने मानवता की अलख जगाई ।।२।।

चारो ओर घोर हिंसा थी,
धर्म नाम पर यज्ञ रचाते ।
अविवेकी पाखण्डी पडित,
नर-पशु-बलि मे स्वर्ग वताते ।।
किन्तु अहिसाऽमृत वर्षा से तुम ही ने वह आग बुझाई ।
मोह ममत्व त्याग कर तुमने मानवता की अलख जगाई ।।३।।

स्याद्वाद औ अनेकात का,
तुमने सबको पाठ पढाया ।
धनिक दीन सुखिया दुखिया का,
ऊच नीच का भेद मिटाया ।।
समता भाव सुहाया सब को विश्व मैत्री मन को भायी ।
मोह ममत्व त्याग कर तुमने मानवता की अलख जगाई ।।४।।

आवश्यक से अधिक परिग्रह,
मत रखो, इच्छाएं रोको ।
आत्म प्रशसा पर निदा तज,
मन का कालुष धोना सीखो ।।
तृष्णा छोडो मत्र बताया 'लो सतोष' महा सुखदायी ।
मोह ममत्व त्याग कर तुमने मानवता की अलख जगाई ।।५।।

महावीर के सिद्धान्तों का प्रेरणा स्त्रोत – दीपमालिका

० सुमेरकुमार जैन

भारतीय वसुन्धरा पर अनेक महापुरुषो का जन्म हुआ है। अगर हम सभी की जयन्तियाँ अथवा निर्वाण दिवस मनाने लगें तो वर्ष का कोई भी दिवस ऐसा नही जायेगा जिस दिन किसी न किसी महान आत्मा का जन्म या निर्वाण दिवस न हो। नित्य-प्रति होने वाली गृहस्थी की जिम्मेदारियो से मानव मुक्त नही हो सकता है, अत सभी की जयन्तियाँ या निर्वाण दिवस उसके लिए मनाना असम्भव है। मगर चन्द ऐसे महापुरुष भी हुये हैं, जिन्हे भगवान अवतार युग–निर्माता आदि अलकारो से सम्बोधित किया जाता है। ऐसे महापुरुषो के उपदेशो को स्मरण करने का एक मात्र साधन ही उनकी जयन्ती या निर्वाणोत्सव मनाना रह जाता है। किसी भी पर्व एव त्यौहार को महापुरुष की सम्बन्धित घटना का स्मरण करने के लिए ही मनाते है। ऐसे ही महापुरुषो की श्रेणी मे भगवान महावीर भी हैं जिन्होने अपने जीवन काल के ७२ वर्षों मे प्राणी मात्र को सत्य, अहिंसा, त्याग, अपरिग्रह आदि का उपदेश दिया। समाज मे व्याप्त कुप्रथाओ, कुरीतियो एव हिंसा का उन्मूलन किया और ७२ वर्ष के नश्वर शरीर का परित्याग कार्तिक कृष्णा अमावस्या को किया। इससे कार्तिक कृष्णा अमावस्या को भगवान महावीर का निर्वाणोत्सव समस्त भारतवर्ष मे वडे आनन्द एव उत्साह के साथ दीपमालिका के रूप मे मनाते हैं।

दीपमालिका के पर्व को सिवाय इसाईयो, पारसियो एवं मुसलमानो के प्रत्येक भारतवासी अपना जातीय पर्व मानता है। क्या अमीर क्या गरीब, क्या श्रमिक, क्या नेता सभी अपने धर्म के महापुरुषो के जीवन की सम्बन्धित घटना से सम्बन्धित बताते हुये इस पर्व को मनाते है। भारत विभिन्न धर्मों की सस्कृतियो का भडार है। यह धार्मिक पर्व भारतियो का एक महान सास्कृतिक सगम बन गया है। कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दो सप्ताह पूर्व से ही झोपडियो से लेकर गगन चुम्बी अट्टालिकाओ मे लिपाई-पुताई एव सफाई से त्यौहार के स्वागत की तैयारियाँ आरम्भ हो जाती है। अमावश्या की काली रात्रि मे दीपको की पक्तियाँ ऐसी प्रतीत होती है मानो आकाशी तारे धरा पर उतर आये हो। बहुधा व्यापारी वर्ग इसी पावन दिवस को अपना वार्षिक आर्थिक लेखा जोखा तैयार कर नई बहियो का मुहूर्त करते हैं। भारतीय गृहणियाँ स्मस्त गृह की पूर्ण सफाई करके धन रूपी लक्ष्मी को सादर आमन्त्रित करती है तथा लक्ष्मी की पूजा भी की जाती है। वच्चो से बूढो तक इस पर्व के आगमन पर अनोखा आनन्द एव उल्लास देखा जाता है। इस पर्व का महत्व स्वास्थ्य विज्ञान के आधार पर भी कम नही है।

दीपावली भगवान महावीर के निर्वाणोत्सव की मधुर स्मृति कराती है। साथ ही महावीर के

सिद्धातो को अपने जीवन मे उतारने की प्रेरणा प्रदान करती है। उस समय की जनता महावीर को अपने युग का महापुरुष मानती थी। महावीर ने जो कुछ कहा उसे प्रथम अपने जीवन मे पूर्ण रूप से उतारन के पश्चात कहा। सत्य, अहिंसा, त्याग आदि सिद्धान्तो को व्यावहारिक जीवन मे उतारने का उन्होने उपदेश दिया। ७२ वर्ष की आयु मे जब ६ दिवस कम रह गये थे तब ही उन्होने पावापुर ग्राम के समीप प्रतिमा योग धारण कर लिया और कार्तिक कृष्णा की चतुर्दशी की काली निस्तब्ध रात्रि मे अपनी नश्वर देह का नश्वर ससार से परित्याग कर स्वर्ग लोक मे पहुँच गये थे। इस प्रकार महावीर को निर्वाण प्राप्त हुआ। महावीर का निर्वाणोत्सव उपस्थित जनता एव देवो ने दीप जला कर मनाया और मोक्ष रूपी लक्ष्मी का पूजन किया। अमावस्या की भयावही रात्रि मे मनुष्य एव देवतागण दीप जलाने जा रहे रहे थे तब एक हर्षवर्द्धक घटना और घटी कि महावीर के प्रधान शिष्य गणधर गौतम को केवल्य ज्ञान की प्राप्ति हो गई थी। इससे और भी उत्साहित होकर उपस्थित देवताओ एव जनता ने दीपक प्रजज्वलित किये। मोक्ष लक्ष्मी एव ज्ञान लक्ष्मी का पूजन किया। उस समारोह मे विना भेद भाव के सभी सम्प्रदाय के लोग उपस्थित थे।

महावीर निर्वाण का दिवस मनाने के तदुपरान्त सभी मानव आपस मे वात्सल्य स्वरूप मिलते हैं। भेदभाव, रागद्वेष आदि भूल कर हर्ष के साथ पर्व को मनाते हुए हमे महावीर के सिद्धान्तो से प्रेरणा लेनी चाहिए। हमारा कर्तव्य होना चाहिए कि हमे महावीर के प्रतिपादित सिद्धान्तो को मध्य नजर रखते हुये समाज मे व्याप्त कुप्रथाओ को निवारण करने का भरसक प्रयास करना चाहिये। भारतीय सस्कृति मे जैन सस्कृति का महत्वपूर्ण योग रहा है। निर्वाण दिवस को हमे सार्वजनिक रूप से मनाना चाहिए, जिस प्रकार महावीर का जन्म दिवस जयन्ती के रूप मे मनाते हैं जिसस जनता समझ सकेगी कि भारतीय सस्कृति मे जैन सस्कृति का भी योग कम नही है।

दीपमालिका पर वहियो का पूजन करते है और वार्षिक आर्थिक लेखा-जोखा करते है। इसके साथ ही हमे चाहिए कि आध्यात्मिक लेखा-जोखा भी करें कि हमने वर्ष मे क्या किया ? इससे आत्मबल मिलेगा। विचारो मे शुद्धता एव नैतिकता उत्पन्न होगी। आज हम भौतिक पाश्चात्य सभ्यता की ओर झुके हुये हैं, उसकी और आकर्षण कम होगा। जो स्वय एव समाज के लिए लाभप्रद सिद्ध होगा। लक्ष्मी पूजन से इस समय हमारा तात्पर्य ज्ञान एव मोक्ष से होना चाहिये न कि धन से। धन आध्यात्मिक विकास में बाधा उत्पन्न करता है। जो वर्ग भेद का सघर्ष चल रहा है वह धन सग्रह की भावना के कारण ही है।

मूक पशुओ की हत्या, दया भाव, आध्यात्मिक दृष्टिकोण एव प्राणी विज्ञान के सिद्धान्तो के विपरीत है। मूक पशुओ की हत्या अपनी रसना इन्द्रियो के वशीभूत होकर करना मानव की सबसे बडी निर्बलता एव सभ्य मानव समाज पर कलक है। अगर हम इसे समाप्त नही कर सके तो मानव मे और हिंसक पशु मे क्या अन्तर है ? पशु हत्या चाहे धर्म के नाम पर हो, चाहे आर्थिक लाभ अर्जित करने के लिए हो, चाहे उदर पूर्ति के लिए हो, हर अवस्था मे निन्दनीय है और मानना होगा कि मानव मे शैतान घर कर गया है और उसने उसे मानव से दानव बना दिया है। हमे चाहिए कि पशु हत्या को राजकीय रूप से अपराध घोषित करावें।

समाज मे कई कुप्रथायें व्याप्त हैं। जुआ खेलना भी उनमे से एक है। दीपावली जैसे पावन दिवस पर भी कई व्यक्ति धन प्राप्ति की लालसा

से जुआ जैसे निन्दनीय कृत्य को करते है। मगर वह उनकी बर्बादी का कारण बन जाता है। जुआ मे हजारो घर तबाह होते देखे गये है। कल्पना कीजिए, क्या राष्ट्र एव समाज जुआरी लोगो से समुन्नत होने की आशा कर सकता है? कभी नही। हालांकि जुआ खेलना कानूनन अपराध है, अत हमे चाहिये कि समाज मे व्याप्त इस रोग को जड मूल से मिटाने मे भरसक अपनी शक्ति लगा दें।

दीपावली पर आतिशबाजी मे धन का अपव्यय होता है, इसके लिए कुछ सयमी सीमा प्रत्येक को बनानी चाहिए। बच्चो की खुशी के लिए आतिशबाजी आवश्यक भी है, पर सीमित होनी चाहिये।

आतिशबाजी कई बार घरो की बरबादी भी कर देती है। इससे हुए अग्नि काड से आनन्द का वातावरण विषाद मे परिवर्तित हो जाता है।

प्रत्येक पर्व का उद्देश्य होता है, उसे प्राप्त करना मानव का कर्तव्य है। किसी पर्व विशेष पर कई कुप्रथाओ का प्रचलन हो जाता है। उनको समाप्त करने मे सहयोग प्रदान करना अपना कर्त्तव्य होना चाहिये। आज इस भौतिक एव प्रजातन्त्र के युग मे अपना कर्त्तव्य का भान तो अल्प मात्रा मे रहा है। वर्तमान युग को अधिकारो का युग भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। चारो ओर अधिकारो की ही माग है। मगर यह नही भूलना चाहिए कि प्रत्येक अधिकार के साथ कर्त्तव्य युग रहता है। अत. भगवान महावीर के द्वारा प्रतिपादित सत्य, अहिंसा, त्याग एवं अपरिग्रह के सिद्धान्तो को अपने दैनिक जीवन मे उतारने का सकल्प हमे उनके निर्वाणोत्सव पर अपना कर्त्तव्य समझ कर अवश्य करना चाहिए। इन्ही सिद्धान्तो से मानव एवं राष्ट्र का कल्याण सम्भव है।

जैनत्व के प्रतीक और हम

• श्रीमती रूपवती 'किरण'

भगवान महावीर के २५००वें निर्वाणोत्सव के सन्दर्भ मे हम बाध्य हो गये हैं, अपने हृदय को टटोलने के लिए। हम चाहते हैं महावीर स्वामी के सिद्धान्तो को घर-घर पहुँचाये ताकि अशाति की अग्नि मे झुलसती दुनिया शाति प्राप्त कर सके। परन्तु जो स्वय ही संतप्त हो, तृपित हो, वह दूसरो की तृषा कैसे मिटाये? क्या यह सभव है? नही, तो आइये विचार करें, देखें समाज की झांकी। "अहिंसा परमो धर्म" को मानने वाला समाज बाहर से कितना ही स्वच्छ क्यो न हो अन्तर से हिंसक हो गया है।

समाज मे हिंसा, असहिष्णुता, दुराग्रहिता व परिग्रह सचय की वृत्ति बढ गई है। हम अपने आदर्श से हट गए हैं। जैनत्व के प्रतीक ये चार लक्षण है यथा आचार मे अहिंसा, विचारो मे समता वाणी मे स्याद्वाद जीवन मे अपरिग्रहवाद जैनो मे होना अनिवार्य है। ये जीवन ये अतरग भावना के प्रतिबिम्ब होकर उभरते है। दिनचर्या इन भावो का प्रतिनिधित्व करती है। ये चार गुण जीवन मे आत्मसात् हो जायें, तो आधि-व्याधि-उपाधि का प्रभाव व्यक्ति पर अपना प्रभुत्व स्थापित नही कर सकता और पाचो पापो से सहज निवृत्ति होने लगती है। निष्पक्ष होकर देखें, हमारा जीवन प्रवाह उचित दिशा मे प्रवाहित हो रहा है अथवा नही। अत इन चारो की परिभाषा ज्ञात कर अपने जीवन का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

आचरण मे अहिंसा—

जिस आचरण से अन्य प्राणियो के तन-मन-धन पर किसी प्रकार का आघात न हो, परतु उनका पारमार्थिकत: भी अहित न हो अर्थात् ऐसे वचन न बोलें, ऐसे कार्य न किये जायें कि जिनसे अन्य प्राणी पथ-भ्रष्ट हो, दुर्गति के पात्र बनें। इसे आशिक अहिंसा कह सकते हैं। जितना दूसरो का ध्यान आवश्यक है, उतना ही अथवा उससे कही अधिक अपना ध्यान भी परमावश्यक है। यह बिना वस्तु तत्व को समझे नही हो सकता। शास्त्रो के अध्ययन से वस्तु के स्वरूप को जानें, उनका मनन-चिंतन करें, तब हमारे आचरण मे पवित्रता आ सकती है। वस्तु की मर्यादा अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव मे स्थित रहने की है। हम पर के कर्तृत्व के व्यामोह मे इस तथ्य को भूल गये है। अत' कर्तृत्व के अहकार को छोड स्वप्रतिष्ठित होने का सद्प्रयत्न करें ताकि अपने द्वारा दूसरो की हिंसा होने के पूर्व हम अपनी आत्मा की मर्यादा को नष्ट न होने दें। यदि ऐसा ध्यान सदैव रखा गया तो आचरण से अहिंसा का तादात्म्य संबध स्थापित हो जायगा। ऐसा तभी होगा, जब हम आत्म स्वभाव को भली भांति पहिचान कर उस पर अटल विश्वास कर लेगे। तब ससार की कोई

शक्ति हमें पदच्युत न कर सकेगी । सत्य का अनुभव हो जाने पर आंतरिक सुरक्षा होगी और उसकी सहचारी स्व-पर कल्याणकारी भावनायें भी प्रस्फुटित होती रहेंगी; जिनसे स्वभावत: हिंसा नही होगी । पद-पद पर की सावधानी हमे मानसिक, वाचनिक एवं कायिक तीनों रूप से अहिंसक बना देगी ।

विचारों में समता—

अहिंसक ही समता धारण करने मे समर्थ होते है । उनके विचार ठोस व सुदृढ होते है । वे सबके साथ सामजस्य स्थापित कर सकते हैं । उन्हें अनुकूलता अहकार मे नही डुबाती; प्रतिकूलता से उद्विग्नता नही आती । क्योकि वस्तु व्यवस्था यथावत् बनी रहती है, परिवर्तन शक्य नही । मान्यता चाहे जैसी बनाते रहें । "एक नाव मे कुछ यात्री नदी पार कर रहे थे । अचानक जल का वेग बढ गया । नाव डगमगाने लगी । मल्लाह ने यात्रियो को सावधान किया कि जो तैरना जानते हो नाव से कूद कर पार हो जायें वरना डूबने की आंशका है । उसमे एक दुराग्रही यात्री भी था । कहने लगा—आप सब निश्चिन्त रहे, मैं नदी को शांत होने का आदेश देता हूँ, हम अभी किनारे लग जायेंगे और उसने आदेश देना प्रारभ कर दिया— नदी शांत हो जा, नदी शात हो जा । पर नदी का वेग क्या उस पर निर्भर था ? वह बढता ही गया । कुछेक यात्री सहमे हुए से नदी के शात होने की राह देखते रहे । कदाचित् यह कोई चमत्कार कर दिखाये । परतु वेग की सतत् वृद्धि देख वे नाव का मोह छोड तैर कर पार हो गये । उस आदेश कर्त्ता हठी यात्री को लेकर नाव डूब गई । वस्तु की मर्यादा ध्यान मे आते ही दुराग्रह पलायन कर समता आ जाती है । सब जीवो के प्रति मैत्री भावना, विद्वज्जनो के प्रति प्रमोद भावना, दुखियो के प्रति करुणा भावना एव विरोधियो के प्रति माध्यस्थ भावना सहज रूप से हो जाती है ।

वाणी में स्याद्वाद—

वस्तु स्वरूप को हृदयंगम करने वाले व्यक्ति की वाणी संयत हो जाती है । वह मुखर हो यद्वा-तद्वा वचन मुख से नही निकालता । सत्य को गहराई से समझ मौन रहना अधिक प्रिय लगता है । सत्य अखण्ड है, वाणी खण्डित है । यथार्थत: सत्य कथन की वस्तु नही, अनुभव करने की है । अनुभव अखड होता है । वाणी एक बार मे सत्य को स्पष्ट नही कर सकती । क्योकि एक-एक अक्षर से शब्द, शब्दो से वाक्य एव वाक्यो से पद का निर्माण होता है । इसलिए वस्तु का प्रतिपादन अपेक्षाकृत नय विवक्षा से होता है । नय वस्तु की आंशिक सिद्धि करते हैं । वे प्रमाण के ही अंग हैं । समग्र वस्तु को नय विषयभूत नही करता । परस्पर विरोधी अनेक धर्मात्मक वस्तु को अनेक नयो से समझा जाता है । अतएव स्याद्वाद रूप वाणी ही दुराग्रहो से रहित विवेकपूर्ण एव अकाट्य है ।

जीवन में अपरिग्रहवाद—

उपर्युक्त सिद्धात जीवन में उतरते ही अपरिग्रहवाद का रूप ले लेते हैं । सिद्धात सर्वप्रथम जाने जाते है, फिर उनका मनन होता है । तत्पश्चात् प्रयोग मे लाये जाते हैं । प्रयोग के बिना वे अर्थहीन हैं । जो वस्तु को यथावत स्वीकार करता है, वह पर वस्तु के ग्रहण की इच्छा नही करता । आत्मा के लिए आत्मा उपादेय है । आत्मा के अतिरिक्त अन्य जितने—चेतन अचेतन पदार्थ हैं वे मात्र ज्ञेय हैं । उन्हें न आत्मा ने कभी ग्रहण किया है न त्याग । त्याग उसका होता है जो कभी ग्रहण किया गया हो । वह तो ममत्व बुद्धि से ग्रहण त्याग का विकल्प करता है । जिन्हे हम हवाई महल की उपमा दे सकते हैं और जो कभी कायरूप मे परिणित नहीं होता । आत्मा इस तथ्य को न जान कर युग-युग से भूल की पुष्टि करता आ रहा है । इसी कारण वह संसार के चेतन-अचेतन समस्त पदार्थों को ग्रहण

कर सबका स्वामी बनना चाहता है एवं अपने को भूल उन सबका अधिपत्य स्वीकार कर कल्पना मे उन्हे स्वामी मान लेता है। इस प्रकार आत्मा स्वपर दोनो की स्वतन्त्रता को अस्वीकार कर अज्ञान से पाप का सृजन सचयन कर उसी तरह दड भोगता है जैसे सट्टे का व्यापार बिना लेन-देन के केवल वायदो पर चलता है। पर बाजार भाव गिरने पर क्षतिपूर्ति का दण्ड तो भुगतना ही पडता है।

प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है। हम उस स्वतन्त्रता को स्वीकार न कर अनर्गल प्रवृत्तियो मे रत अन्य की स्वतन्त्रता का अपहरण करना चाहते हैं। इसके साथ दूसरी भूल भी जुडी हुई है। वह यह कि हम अपनी स्वतन्त्रता को स्वीकार न कर स्वयमेव परतन्त्र बन रहे हैं। यही महापाप है। आत्मा से पर द्रव्य तो पृथक है ही, परन्तु आत्मा मे होने वाला विकार (मोह, राग, द्वेष आदि) भी जल मे होने वाली शेवाल की भाँति आत्मा से अत्यन्त पृथक हैं। आत्मा का स्वभाव सर्वशुद्ध निर्विकार है। स्वभाव की भली भाँति श्रद्धा हो जाने पर आत्मा अपने पद मे रहने का प्रयत्न पूर्वक पुरुषार्थ करता है। आत्म स्थित न होने की दशा मे स्वभाव वैपरीत्य मे तन्मय नही होता। उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। जैसे कोई व्यक्ति अपनी पूजी से अपना स्वतन्त्र व्यापार करना चाहता है। परन्तु किसी कारण वश वह अपनी पूजी का उपयोग करने मे जब तक असमर्थ है, जब तक ऋण लेकर कार्य चलाता है, परन्तु उसकी ऋण लेने की जरा भी इच्छा नही है। न ही ऋण से उसे प्रसन्नता होती है। ज्योही वह अपनी पूजी का उपयोग करने योग्य होता है, त्योही ऋण चुका स्वतन्त्र हो जाता है; क्योकि उसकी धारणा मे ऋण सदा उपेक्षित रहता है।

अतः, हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उपर्युक्त गुणो से विभूषित हो भूले भटके मानव को दिशा निर्देशन कर सकें, जिससे पारस्परिक बन्धन शिथिल हो भाई-चारे की भावना [illegible] होने लगे। यदि हमने स्वेच्छा से अपरिग्रह को नही अपनाया तो समय की आधी के थपेडो से बच न सकेंगे। अभावग्रस्त मानव व असामाजिक-तत्व हमारी सपत्ति हमसे बलपूर्वक छीन लेंगे और हम हाथ मलते रह जायेंगे। यह स्थिति अत्यन्त भयावह होगी। अत इसके पूर्व सभलें, आत्म रूचि मे तन्मय हो, और बहुमुखी वृत्ति से उदासीन हो शाति का आह्वान करें। चद समय पश्चात् अनिवार्यत आने वाले साम्यवाद को हम अभी ही क्यो न सहर्ष निमत्रित कर लें।

हमारी वर्तमान स्थिति—

समाज को देखकर क्या हमारे मन मे कभी ठीस उठी है? अवश्य उठी होगी। क्योकि आप एक सहृदय मानव जो हैं। हमारी कुरूपता भले ही सिद्धातो के आवरण के कारण दूसरे न देख पायें, पर हमसे वह कैसे छिपी रह सकती है? हम जितने ही उच्च स्वर से भगवान महावीर की जय बोलते हैं, उतने ही हम उनके बतलाये मार्ग से दूर हटते जा रहे हैं। हमारा जीवन खोखला होता जा रहा है। 'पोचा चना बाजे घना'।

उत्तरोत्तर मानव समाज का नैतिक अवमूल्यन हो रहा है। ये लक्षण शुभ नही हैं। यदि मानव धर्म का आधार छोड दे तो उसमे और पशु मे कोई अन्तर नही है। अब अनीति की अमर वेल फल फूल रही है। अत मानव मे पाशविक वृत्तियाँ सजग हो प्रबल हो गई हैं। त्याग की बातें स्वप्नवत् लगती हैं। धर्म परिहास सा जान पड़ता है। हम अधेरे मे हैं। हमने स्वय अधकार को इतना ओढ लिया है कि अपने मे बसे मानव को नही देख पाते। अधकार की गहराइयो मे धर्म का एक दीपक जलाने की नितांत आवश्यकता है। उसकी ज्ञान ज्योति मे ही गुणावगुण को देख सकते हैं। अधेरा है अज्ञान एव ज्ञान प्रकाश है। हृदय की सुन्दरता उसके कार्यों से आकी जाती है।

हम किञ्चित् दान-पुण्य कर अनेक बुराइयों , पर दृष्टि-पात न करें तो हम अपने प्रति अन्याय कर रहे हैं । और जो स्वय के प्रति निष्ठावान न हो वह दूसरो के प्रति कैसे हो सकेगा ? हम विशिष्ट हैं, हमारा जैन धर्म सर्वोत्कृष्ट है । सिद्धात अद्वितीय है—यह प्रचारित कर लेने मात्र से कर्त्तव्य की इतिश्री नही होगी । हम उत्तरादायित्व को समझें ।

हम क्या करें—

कुछ समय पूर्व तक अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह जैनो के नाम से जुडे हुए थे कि भिन्नता की कल्पना भी नही होती थी । जैन नाम अहिंसादि गुण । 'जैन' नाम मे ये गुण समाहित थे । पर अब अवांछनीय कार्यों से समाज दूषित हो रहा है । इधर लोगो की तरह महावीर के बेटे भी आज सब ओर से अपना विश्वास खो रहे हैं । गृहस्थावस्था मे विशेष त्याग तपस्या की आवश्यकता नही है । बस जीवन थोडा सा परिवर्तन चाहता है । जिन सिद्धान्तो का हम विश्व मे पचार करना चाहते हैं, यदि हम उसी प्रकार की दिनचर्या बना लें तो विना प्रचार किये प्रचार हो जायेगा । महावीर के मात्र मौखिक स्मरण से उनके आराधक या जैन धर्म के अनुयायी कहलाने से लौकिक या पारमार्थिक सिद्धि नही होगी । उनके बतलाये मार्ग का अनुसरण और यथोचित साधना आराधना करें तो उनके परमभक्त बन एक दिन महावीर भी बन सकते हैं । भगवान की श्रेष्ठता की घोषणा करते-करते हम उदघोषक ही रह गए है । आराधना के कोई लक्षण प्रकट नही हुए ।

बहुमूल्य वस्तु स्वर्णपात्र मे सुरक्षित रखी जाती है क्योकि स्वर्ण अपने आप मे अत्यन्त स्वच्छ है उसमे न जग लगने का भय है, न मिट्टी की तरह गलने का भय । भगवान की अमृतमय वाणी चेतन के घर मे ही रखी जा सकती है जो स्वभावत अत्यन्त स्वच्छ है । परन्तु हम अपराध कर बैठे हैं कि आत्मा रूपी स्वर्ण कलश मे विकारो का विष सहेजे हुए हैं । अस्तु, अमृतमयी देशना भी विषमय हो जाती है और हम उसका वमन कर देते है । अमृत पान करना है तो विकारो को निकाल हृदय मे स्थान बनाना होगा । बन्धन प्रिय है तो मुक्ति की बात निरर्थक है । मुक्त होना है तो प्रारभिक प्रबन्ध आवश्यक है । बधन एव मुक्ति दोनो की सगति एक साथ नही बैठ सकती । निर्विकारी होना है तो विकारो से अनभिज्ञ न रहे । तब उनको दूर करने का दृढ सकल्प कर जीवन जियें तो विकारो से बचने की प्रवृत्ति स्वत निर्मित होती जायगी ।

विद्वतजन अपने हृदय मे समय-समय पर झाकते रहे एव समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करें क्योकि वे समाज के मनश्चिकित्सक हैं । नाडी उनके हाथ मे हैं । वे समाज के मन मानस का सफल आपरेशन कर उसे इस योग्य बना दें कि वह अपने व अपनी सस्कृति के प्रति जागरूक हो तदुपरान्त प्रशस्त क्रिया करे । अभी हम व्यर्थ के क्रियाकाँडो मे फसकर कर्त्तव्यो के प्रति उदासीन हो सबका अहित कर रहे हैं । उस अन्धेरे अतीत को विस्मृत कर अब जाग्रत हो । निर्वाणोत्सव वर्ष अधिक अनुकूल है आत्मशुद्धि के लिए और फिर 'जब जागो तभी सवेरा' । सोने वालो का न कभी सवेरा हुआ है और न होगा । जगाने वाले मौन होकर सिद्ध हो गए, प्रतीक स्वरूप उनकी वाणी ग्रंथो मे अभी भी शेष है । अब हम स्वय चाहे तो जागें एव उनका अनुकरण कर वैसा ही साचा बना जीवन को उसमे ढाले, अहिंसा आचरण स्वपर कल्याण-कारी है ।

जब तक सृष्टि है, जब तक सघर्ष होते रहेगे और वे हिंसा को भी जन्म देते रहेगे । हिंसा मन मे जन्म लेती है । उसके जन्म के साथ ही भय का सचार होता है । भय से हृदय टूटकर निर्बल हो जाता है । टूटे हृदय कर्त्तव्य का पालन नही कर सकते । व्यक्ति टूट गया तो परिवार टूटता है, देश टूटता है । प्रतिफल प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि बालक

तक असन्तुष्ट हैं। तोड-फोड, आगजनी, बलवे, हत्याकाण्ड, हडतालें आदि प्रतिक्रियायें हो रही हैं। ये सब क्या हैं ? विवेकहीन कार्य। जो हिंसा से भरे अविवेकी मानस के परिचायक हैं। व्यक्ति भूल गया है कि राष्ट्र की सपत्ति, साधनो का विध्वश करना अपनी ही क्षति करना है। राष्ट्र कोई एक पुरुष नही, अपितु हम सब अनेक व्यक्तियो का समुदाय है।

समय की पुकार को अनसुनी न करें। मानवता को आश्रय चाहिए। आश्रयदाता मानव मानवता को तिलांजलि दे दुराचरण मे रत हैं। हिंसात्मक विचारो को हृदय मे उदय न होने दें। विचारो की सावधानी रखें, तो मानसिक हिंसा रुकते ही वाचनिक व कायिक हिंसा से सहज बच जायेगे एव अहिंसा का प्रादुर्भाव हो जायगा। अहिंसा की साधना कठिन है पर असभव नही। सर्वप्रथम सूक्ष्मता से अध्ययन करना होगा। उससे अहिंसा की परिभाषा ज्ञात होगी एव रुचिपूर्वक सतत साधना से उसकी प्राप्ति होगी, किंवा अहिंसामय ही आत्मा हो जायगा। यह आत्मा की चरमोत्कृष्ट परम अवस्था है। परमात्मत्व को प्रकट करती है। इसके पूर्व दैनिक जीवन मे व्यावहारिक अहिंसा को अविलब अपना लेना हमारा परम कर्त्तव्य है क्योकि हम भगवान महावीर की अहिंसक परम्परा को मानने वाले हैं।

युग की चुनौती—

वर्तमान युग की चुनौती को हम सहर्ष स्वीकार करें। जगत को बतला दें कि कैसा ही भीषण सकट का समय क्यो न हो हम अपने सकल्पो से हटते नही हैं। कतिपय हीन आचरणो ने हमे कलकित कर दिया है, अपने सदाचार से उन्हे तत्क्षण धो देना होगा। यदि जैनेतरो की तरह हम भी अपराधो को बार-बार दोहराते रहें तो उनकी तरह हमारा आराध्य भी पैसा हो गया, महावीर नही, उनकी वाणी नही। और जब हमने प्रभु को आदर्श ही नही माना तो उनके नाम लेने का भी हमे अधिकार नही रहा। हम अपने आचरण में संशोधन करें या महावीर का नाम लेना छोड दें ताकि जैन धर्म एव प्रवर्तको की अपकीर्ति न हो। यह अतिरिक्त पाप हम क्यो मोल लें। इस सदर्भ मे उस चारण की स्मृति आ जाती है जो राणा प्रताप की निरतर हार के कारण सघर्षों से जूझ सकने मे असमर्थ हो अकबर के दरबार मे नौकरी की याचना करने गया। किन्तु राणा प्रताप की दी हुई पगडी को उतार कर सिर झुकाया ताकि उस स्वाभिमान वीर की उपहार स्वरूप दी हुई पगडी का अपमान न हो।

समस्त विश्व मे आग लगी है। हिंसा की लपटो से ही कोई देश अछूता नही बचा। व्यक्ति-व्यक्ति मे हिंसा पनप रही है। वस्तुतः व्यक्तिगत हिंसा ने ही सामूहिक हिंसा एव युद्ध का रूप ले लिया है। हम भी उनमे सम्मिलित हैं। दोष दें तो किसे ? मात्र नारो से हिंसा की ज्वाला शात नही होगी। इस हिंसा का एक जबर्दस्त कारण परिग्रह ही है। वह चाहे आतरिक क्रोधादि कषाय रूप हो अथवा बाह्य सामग्री के रूप मे हो, परिग्रह तो परिग्रह ही है। आत्मा की पर को ग्रहण रूप विकार वृत्ति दुख और अशाति की जड है। आतरिक परिग्रह बाह्य परिग्रह को विशेष बल प्रदान करता है। इसीलिए सचय वृत्ति ने हमारे मन पर ऐसा तीव्र कठोर आघात किया है कि हमारी वाणी, कर्म सब विद्रूप हो उठे हैं। देश विपन्न है, सपन्नता चद लोगो मे बटी है। अराजकता फैलने का प्रमुख कारण यह भी है। करोडो व्यक्तियो को तडपाकर उन्ही के कधो पर सपन्नता चल रही है। गभीरता से विचारें कि क्या यह न्याय है ?

चद लोग घी दूध मे नहायें और बहुतो को दर्शन भी दुर्लभ न हो। कोई विरले महलो मे कूलर पखो मे करवट बदलें, विद्युत की जगमगाहट से आखें चोधयाते रहें और किन्ही की झोपडियां दीपक की क्षीण ज्योति के अभाव मे अधकार में अपने दुर्भाग्य पर रोती रहे। कोई पारदर्शी परिधानों

मे अ ग प्रदर्शन करें तो किसी को अंग ढकने को आवश्यक वस्त्र भी उपलब्ध न हो, यह सब हिंसा नही तो क्या है ? किसी के भडारो मे सामग्री सड रही हो और कोई उसके अभाव मे एक दिन मे सौ-सौ बार मारणातिक वेदना सहे, विपन्नता की लाश पर सम्पन्नता कुलांचे भरे। गाधी के देश मे ये कैसी अहिंसा ? इस अहिंसा को विश्व के किसी धर्म ने मान्यता नही दी।

अपरिग्रहवाद की अनिवार्यता अभी और इसी क्षण है। भगवान महावीर के सिद्धातो को व्यवहृत हो जाना चाहिए। किसी भी सिद्धातो या नीतियो का प्रचार त्याग व उत्सर्ग चाहता है। समाज को आहुति देनी होगी अपनी लालसा की, स्वार्थ की। आवश्यकताओ, आकाक्षाओ को सीमित करना होगा। आत्म नियत्रण बाह्य नियत्रण मे सहयोगी है एव स्थायित्व लाता है। हम यह कह कर कि सब व्यक्ति अपने-अपने कर्मो का भोग करते हैं, अपने कर्त्तव्य से परागमुख न हो।

मानव होने के नाते सब मानव समान है। आर्थिक सपन्नता या विपन्नता मात्र से बडे-छोटे ऊँच-नीच कैसे हो सकते है ? अपने को ऊँचा समझ अभिमान से अन्य मानवो को हीन समझना कहाँ का न्याय है ? निधन व निर्बलो मे हीनता की भावना भरना क्या अपराध नही ? अपने व्यवहार से दूसरो के अ तरग मे ठेस पहुंचाना, उनके मानस पर निरतर आघात करना घोरातिघोर हिंसा है। समाज की विषमता को मिटाये विना अहिंसा का प्रादुर्भाव भी नही हो सकता। चाहे हम कितने भी क्रियाकाड मे व्यस्त रहे।

विज्ञान ने भौतिक सामग्रियो का अम्बार लगा दिया है। प्रत्येक व्यक्ति उसका उपयोग करना चाहता है। पैसो का अभाव अभिलाषा पूर्ति मे अनिवार्य बाधा है। महगाई की भीषणता से उदरपूर्ति भी कठिन हो गई है। इन परिस्थितियो से अशात हृदयो मे स्वयमेव हिंसा का तूफान आता जाता है। हिंसक मन अनेक दुर्घटनाओ के जनक हैं। शासन जनता की दैनिक आवश्यकताओ की आपूर्ति करने मे अक्षम है। नये-नये नारे व आश्वासनो का राशन लेकर जनता कब तक अपने धैर्य की परीक्षा दे ? दलगत राजनीति के व्यूह मे उलझा हुआ शासन भूखी जनता को कैसे नियत्रित कर सकता है ? जनता ऐक्य सूत्र मे बधे, जनतत्र सफल हो। इसके लिए स्वस्थ शासन की आवश्यकता है।

भ्रष्ट शासन की तरह पथ-भ्रष्ट समाज भी दूसरो को मार्ग दर्शन देने मे सर्वथा असमर्थ है। जैन समाज विश्व को अहिंसादि का सदेश मात्र सप्रेषित करता रहे तो उससे विशेष लाभ नही होगा। सर्व प्रथम हम अपनी मर्यादा के अनुसार उन सिद्धातो को आत्मसात करें तब हमे देखकर अन्य जन अपने जीवन को उसी प्रकार अपनाएगे। विना प्रेक्टिकल के केवल थ्योरी से विद्यार्थी तथ्य को हृदयगम नही कर सकते। प्रेक्टिकल होना अनिवार्य है।

भोजन की अधिक मात्रा या व्यजनो की विविधता से स्वास्थ्य का सबध नही है। भोज्य पदार्थ का यथोचित पाचन ही शरीर को स्वस्थ रखता है। इसी प्रकार जैन सिद्धांत अत्यत सुन्दर है, कल्याणकारी हैं, इतने कथन या प्रतिष्ठा मात्र से कार्यसिद्धि नही होती। प्रयोजन मूल [illegible] कि वे हमारे जीवन में कितने

भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव पर व्यापक कार्यक्रम

विश्व को सत्य और अहिंसा का मार्ग बताने वाले विश्ववद्य भगवान महावीर स्वामी के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के कार्यक्रम आयोजित करने हेतु भारी उत्साह है। देश के सभी भागो मे इसको मनाने के लिए तैयारिया पूर्ण करली गई हैं।

केन्द्रीय स्तर पर

केन्द्र सरकार ने अनक रचनात्मक कार्यक्रम आयोजित करने का फैसला किया है। इन कार्यक्रमो के लिए ५० लाख रू० की धनराशि भी निर्धारित की गयी है।

भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव का अपूर्व प्रसग दीपावली, १३ नववर ७४ को है। भगवान महावीर राष्ट्रीय समिति के सरक्षक राष्ट्रपति श्री फखरूद्दीन अली अहमद १३ नववर, ७४ को प्रात ११०० बजे राष्ट्रपति भवन मे विशेष डाक टिकिट प्रसारित करके देशव्यापी स्तर पर निर्वाण महोत्सव वर्ष (दीपावली १३ नवम्बर, ७४ से दीपावली ४ नवबर ७५) का उद्घाटन करेंगे।

भारत सरकार के पर्यटन विभाग ने जैन मदिरो पर एक वृत्तचित्र तैयार किया है। इसका उद्घाटन केंद्रीय पर्यटन एव नागरिक उड्डयनमत्री श्री राजबहादुरजी, शनिवार ६ नववर, ७४ को प्रात १०.०० बजे प्यारेलाल भवन, बहादुरशाह जफर मार्ग पर करेंगे। १७ नववर, ७४ को रामलीला मैदान, नयी दिल्ली मे एक विशाल जनसभा का आयोजन किया गया है। प्रधान मत्री श्रीमती इदिरा गाधी इस सभा को सबोधित करेंगी। दिल्ली मे विराजमान आचायगण, मुनिगण सभा से रहेंगे। १६ नववर ७४ को दिल्ली मे विशाल धर्मयात्रा जुलूस का कार्यक्रम रखा गया है।

विशाल जनसभा तथा जुलूस के कार्यक्रम के अतिरिक्त लाल किले के प्रागण मे १३ नवबर, ७४ को निर्ग्रन्थ परिषद्, १४ नववर को श्रमण सस्कृति परिषद्, १५ नवबर, ७४ को गौतम गणधर स्मृति दिवस का कार्यक्रम है।

१८ नवबर को मानव सस्कृति का निर्वाणवादी विचारधारा का योगदान परिषद्, १९ नवबर को अनेकात परिचर्चा और २० नवबर को जैन शासन के विकास की भावी योजना विषय पर विशिष्ट सम्मेलन रामलीला मैदान मे रखे गये हैं।

प्रधान मत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी की अध्यक्षता मे जिस प्रकार केंद्र मे, राष्ट्रीय समिति का गठन हुआ है, उसी प्रकार लगभग सभी राज्यो मे वहा के मुख्य मत्रियो की अध्यक्षता मे राज्य समितियो का भी विधिवत गठन हो चुका है। राज्य समितियो

ने राष्ट्रीय समिति के अनुरूप ही प्रभावशील कार्यक्रम तैयार किये है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने देश के अनेक विश्वविद्यालयो से निर्वाण महोत्सव वर्ष मे भगवान महावीर के जीवन तथा उपदेशो एव जैन दर्शन पर सेमिनार एव सम्मेलन आयोजित करने का अनुरोध किया है। आयोग ७ विश्वविद्यालयो को इस कार्य के लिये वित्तीय सहायता भी देगा ।

भगवान महावीर वनस्थली का विकास निर्माण एव आवास मत्रालय द्वारा बुद्ध जयती पार्क के सामने 'अपर रिज रोड' पर किये जाने का निश्चय हुआ है। प्रारभ मे २५ एकड जमीन विकसित की जायेगी तथा अन्ततः यह वनस्थली १७७ एकड जमीन पर एक राष्ट्रीय पार्क के रूप मे बनेगी।

वनस्थली की जमीन के पास ही 'भगवान महावीर मेमोरियल' क निर्माण की तैयारियाँ भी प्रारम्भ हो गयी है। इस मेमोरियल मे जैन कला, स्थापत्य, पैंटिंग पर एक सग्रहालय, भारतीय विद्या पर विशाल पुस्तकालय तथा नेशनल कौसिल आफ जैनोलोजिकल रिसर्च ए ड स्टडीज का कार्यालय भी होगा ।

राष्ट्रीय सग्रहालय, नयी दिल्ली इस अवसर पर एक भव्य प्रदर्शनी के आयोजन की तैयारी कर रहा है। ऐसा भी प्रबध किया जा रहा है कि सारे बूचडखाने बद रहे तथा सभी सार्वजनिक स्थानो पर मास मदिरा का निषेध हो ।

आकाशवाणी ने निर्वाण महोत्सव वर्ष मे अनेक महत्वपूर्ण कार्यक्रम आयोजित किये हैं। देश की अनेक विख्यात पत्र-पत्रिकाओ द्वारा इस अवसर पर विशेपाको का प्रकाशन किया जा रहा है।

अन्य राज्यों में

देश के लगभग १६ राज्यो मे भगवान महावीर बाल केंद्र तथा भगवान ग्रामीण पुस्तकालय प्रारभ करने के लिये शिक्षा मत्रालय ने सभी राज्यो को लिख दिया है। भगवान महावीर की जन्मभूमि क्षत्रिय कुंड ग्राम, वैशाली मे ५ लाख रूपये की लागत पर एक भव्य स्मारक का निर्माण किया जायेगा।

अनेक राज्य सरकारो ने निर्वाण महोत्सव वर्ष को, 'किसी को न मारो वर्ष' के रूप मे घोषित कर दिया है, उनके नाम हैं. गुजरात, हरियाणा, कर्णाटक, मध्यप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र आदि।

यूनेस्को द्वारा

यूनेस्को द्वारा यूनेस्को मे भी निर्वाण महोत्सव वर्ष को अपने कलेण्डर मे सम्मिलित कर लिया है। देश की अनेक सस्थाए भगवान महावीर के जीवन और उपदेशो पर व्यापक साहित्य का प्रकाशत कर रही हैं। इसके अतिरिक्त भी इस अवसर पर सामाजिक सेवा के क्षेत्र मे असख्य कार्य प्रारभ हो गये हैं।

राजस्थान में

राजस्थान मे राज्य सरकार द्वारा 'निर्वाण वर्ष के लिए कार्यक्रम निर्धारण करने हेतु शिक्षामत्री श्री खेतसिंह राठौड की अध्यक्षता मे गठित प्रान्तीय महोत्सव महा समिति के प्रतिवेदन पर राज्य सरकार ने अनेक महत्वपूर्ण घोषणायें की हैं और इन कार्यक्रमो पर 15 लाख रुपये व्यय करने का निर्णय लिया है। यह वर्ष शाँति वर्ष के रूप मे मनाया जायेगा।

राज्य सरकार के निर्णयानुसार इस अवधि मे किसी भी कैदी को मृत्युदण्ड नही दिया जायेगा तथा अन्य सजाओ मे भी कमी की जायेगी।

इस वर्ष के दौरान देशी तथा अन्य शराब की वर्तमान मे जितनी लाइसेन्स शुदा दुकानें है उनकी सख्या मे वृद्धि नही की जायेगी, अपितु कमी करने का प्रयास किया जायेगा। इसी सन्दर्भ मे चूरू एव नागौर मे शराबबन्दी की घोषणा कर दी गई है।

राजस्थान मे भारत सरकार के सहयोग से एक "महावीर ग्रामीण पुस्तकालय" एव महावीर बालकेन्द्र की स्थापना की जायेगी।

विकलागो की सहायतार्थ एक रजिस्टर्ड सस्था का निर्माण किया जायेगा। इस सस्था मे दो लाख रुपये देने का प्रावधान रखा गया है व कम से कम इतना ही कोष जैन समाज भी सस्था मे देगा।

जैन कला स्थापत्य एव साहित्य मे राजस्थान के योगदान पर तीन अलग-अलग ग्रन्थ तैयार किये जायेंगे। एक बालोपयोगी भगवान महावीर की चित्रमय जीवनी प्रकाशित की जायेगी।

इस अवधि मे शिकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है और जिनके पास इसके लाइसेन्स हैं उनके 12 नवम्बर 1974 से निरस्त समझे जायेगें। दोनो वर्षों मे दीपावली के अवसर पर 6 दिनो के लिए शराब व मांस विक्री पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

राज्य सरकार ने सभी म्यूजियमो व सार्वजनिक पुस्तकालयो मे 'महावीर कक्ष' की स्थापना करने तथा राजस्थान विश्व विद्यालय मे "जैन पीठ" कायम करना तय किया है।

निर्वाण वर्ष जैन मन्दिरों व महावीर जीवन से सम्बन्धित व वृत चित्रो के निर्माण चित्रो के निर्माण प्रदर्शनिया, प्रवचनो, जिला मुख्यालयो के चौराहो पर महावीर की शिक्षाओ पर आधारित शिलालेख स्थापित करने आदि के भी निर्णय लिये गये है।

प्रवेश मे मास मदिरा रहित हरिजन बस्तियो के निर्माण का भी सरकार ने निर्णय लिया है। इस कार्य पर 4 लाख रुपये व्यय किया जावेगा तथा राजस्थान को-आपरेटव हाऊसिग फाइनेंस सोसायटी से ऋण इन बस्तियो के निर्माण हेतु लेने 80 लाख रुपया व्याज मुक्त ऋण का भी लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

जयपुर मे

जयपुर नगर मे भी 8 दिवसीय कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं। नगर के मदिरो की 'गुलाबी रग' से पुताई कराई गई है।

इस प्रकार बाह्य दृष्टि से तो अनेक योजनाए क्रियान्वित की जायेगी लेकिन चारित्रिक दृष्टि से, जिसकी समूचे देश को सबसे बडी आवश्यकता है, अधिक ध्यान नही दिया गया है। इस ओर अब भी कुछ किया जाय तो देश समाज, परिवार तथा व्यक्ति का उद्धार हो सकेगा।

भगवान महावीर का २५००वां निर्वाण महोत्सव
वर्ष बड़े धूम-धाम और उत्साह
के साथ मनाएं।

भगवान महावीर के २५००वें पावन परिनिर्वाण महोत्सव के शुभ अवसर पर

"जयपुर जैन डायरेक्टरी" एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

जिसमें आप पढ़ेंगे—

प्रथम खण्ड जयपुर और जैन समाज—जयपुर के इतिहास निर्माण मे जैनो का योगदान, जयपुर के जैन दीवानो का परिचय एव कार्य, जैन भट्टारक, प्रमुख जैन साहित्य भण्डार एवम् साहित्यकार, धार्मिक गतिविधियाँ एव जैनो के प्रमुख पर्व, सामाजिक, राजनैतिक एव आर्थिक क्षेत्र मे जैनो का योगदान, पत्र पत्रिकायें, पत्रकार एवम् प्रतिनिधि, समाजसेवी एव जैन विदुषी महिलायें।

द्वितीय खण्ड जयपुर के सम्पूर्ण जैन मन्दिरो व चैत्यालयो की जानकारी एव आकर्षक कलात्मक वेदियो एव भव्य मूर्तियो के चित्र। राजस्थान के प्रमुख जैन तीर्थ, मन्दिर तथा चमत्कारिक मूर्तियो के चित्र।

तृतीय खण्ड जैन शिक्षण सस्थायें। साहित्य शोध संस्थान। पुस्तकालय एव वाचनालय, धर्मशाला, भवन, चिकित्सालय एव औषधालय, परमार्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सगीत-सस्थाओ आदि का परिचय।

चतुर्थ खण्ड सामाजिक सस्थाओ के टेलीफोन नम्बर एव गोत्र—सरनेम वाइज फोन तालिका। व्यापार एव औद्योगिक प्रतिष्ठान, वकील, डाक्टर, चिकित्सक, इजीनियर, शिक्षक-वर्ग आदि।

पचम खण्ड केन्द्रीय, राजकीय एव अर्द्ध सरकारी कार्यालयो के अतिरिक्त बैंक, फैक्ट्री एव अन्य प्रतिष्ठानो मे कार्यरत जैन कर्मचारियो की जानकारी।

षष्ठम खण्ड व्यक्ति परिचय—सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, साहित्यिक क्षेत्रो के प्रमुख एव कर्मठ कार्यकर्त्ता। प्रतिष्ठित एव उच्च पदो पर कार्यरत जैन बन्धुओ का परिचय, ब्लाक सहित।

जयपुर के इतिहास मे सर्वप्रथम प्रकाशित होने वाली यह डायरेक्टरी लगभग ५०० पृष्ठो की पक्की बाइन्डिंग के साथ ६० से भी अधिक भव्य मूर्तियो एव कलात्मक वेदियो के रगीन चित्रो, भारत के जैन तीर्थ एव प्रमुख दर्शनीय स्थानो का सड़क एव रेल यात्रा मार्ग के नक्शे किलोमीटर दूरी सहित एव १५० से भी ज्यादा व्यक्तियो के चित्रो के साथ आपके समक्ष शीघ्र आ रही है। डायरेक्टरी की सम्पूर्ण सामग्री मुद्रित हो चुकी है।

सम्पादक एव प्रकाशक लल्लूलाल जैन (गोधा), किशनपोल बाजार,
४६६, प० चैनसुखदास मार्ग, जयपुर-३

श्री दिगम्बर जैन अ. क्षेत्र श्री महावीर जी

महावीर भवन

सवाई मानसिंह हाइवे

जयपुर–३

फोन न० ७३२०२

मैसर्स गोपीचन्द सरदारमल